आनन्द अनुभव करती थी। वह योरप से इस क़दर विद्या सीख आई थी जिसकी प्राप्ति से अङ्गरेज़ी और फ़्रेञ्च बालिकाएं सुशिक्षित समझी जा सकती हैं। परन्तु तरुदत्त के लिये यह भी कोई विचित्र बात नहीं थी। योरप से आकर तरुदत्त की रुचि संस्कृत सीखने में हुई। संस्कृत भाषा भी उसने बहुत जल्द सीख ली और उस भाषा के साहित्य-उपवन की कल्पनालता से अङ्गरेज़ी भाषा को वह संवारने लगो। तरुदत्त चाहती तो अपनी ही भाषा में लिख कर बहुत कुछ नाम पैदा करती। परन्तु, खेद है, कि मातृभाषा के साहित्य-प्रेमियों को निराश करके उसने अपने विचारों को प्रगट करने के लिये अङ्गरेज़ी भाषा का आश्रय लिया।

उसका पहला लेख, जब वह अठारह वर्ष की थी, बङ्गाल मैगज़ीन में लिकण्टी-डी-लिसिल (Leconte-de-Listle) नामक लेखक के विषय में प्रकाशित हुआ। तरुदत्त इस लेखक की लेखनी से बड़ी सहानुभूति रखती थी। कुछ दिनों के उपरान्त उसने "सिन्धु" नामक एक सुन्दर कविता लिखी जिसको पढ़कर इङ्गलैण्ड के कई सुकवि मुग्ध हो गये और एक विदेशी बालिका की बुद्धि की प्रशंसा करने लगे।

अपने अल्पकालिक जीवन में तरुदत्त ने दोबार घोर मानसिक कष्ट भी सहे। भ्राता का वियोग हुआ ही था कि सन् १८७४ में बीस वर्ष की अवस्था में अरु का भी प्राण-पखेरू तरु को छोड़कर परलोक चला गया। अब तरुदत्त संसार-यात्रा में अकेली रह गई। वह रात दिन, अब, एकान्त में रहने लगी। अरु तरुदत्त से कम सुबोध नहीं थी। यद्यपि उसकी आकांक्षाएं तरुदत्त की सी ऊंची नहीं थीं, तथापि वह योग्यता में उससे किसी प्रकार कम नहीं थी। दोनों बहने सङ्गीत-विद्या में भी बहुत अच्छा अभ्यास रखती थीं। किन्तु अरु का सङ्कल्प तरुदत्त का सा पक्का नहीं था। मैमाइसिल-डी-अरवर्स (Mlle-de-Arverse) का वृत्तान्त खास अरु के चित्रादिकों द्वारा सुसज्जित करने के हेतु बनाया गया था। पर अरु ने कभी इस पुस्तक का एक पत्रा भी खोल करनहीं देखा।

सन् १८७६ में तरुदत्त-निर्मित "ए शीफ़ ग्लीण्ड इन फ़्रेञ्च फील्ड्स" (A sheaf gleaned in French fields) नामक ग्रन्थ भवानीपुर के सप्ताहिक-सम्वाद प्रेस से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक की समालोचना भी कई समालोचकोंने की। उनमें से एक का मत है कि इस ग्रन्थ में शक्ति और निर्बलता का विचित्र मेल है। कहीं कहीं प्रतिभा को बड़ी बड़ी कठिनाइयों से सामना करना पड़ा है। तब भी इस पुस्तक की विचित्रता पर आश्चर्य होता है। कहीं कहीं पर पद बड़े ही विचित्र बन गये हैं। और कहीं कहीं पर अङ्गरेज़ी छन्दः शास्त्र के नियम ठीक ठीक पालन नहीं हो सके हैं। कहीं कहीं लेखक की असावधानी झलकती है; पर साथ ही साथ उसकी बुद्धिमानी का परिचय मिलने से बहुत आनन्द भी प्राप्त होता है। इस पुस्तक में फ़्रेञ्च भाषा के चुने हुए सौ कवियों की कविता का अनुवाद है।

तरुदत्त पुरातत्व के विषय में भी बहुत कुछ जांच किया करती थी। उसकी समालोचनाशक्ति भी बहुत अच्छी थी।

तरुदत्त की इस पुस्तक की चर्चा इङ्गलैण्ड से बढ़कर फ्रांस देश में होने लगी। एम-गार्सिन-डी-तासी (M. Garcin-de-Tassy) एक प्रसिद्ध पाश्चात्य लेखिका थी। वह तरुदत्त से कदाचित् ही बारह महीने बड़ी थी। क्लेरिसा बेडर (Mlle Clarissa Bader) तरु की एक मात्र प्रवासिनी मैत्रिणी थी। क्लेरिसा बेडर से मिलने पर उसने उस पुस्तक की बड़ी प्रशंसा की थी।

इन्हीं मैमाइसिल क्लेरिसा बेडर ने प्राचीन हिन्दू स्त्रियों के समाज पर एक पुस्तक रची। उसका अनुवाद उसने अङ्गरेज़ी में अङ्गरेज़ी जाननेवाले हिन्दुस्तानियों के लिए कर डाला। इस संसार में पत्रव्यवहार करने के लिए यही महाशया तरुदत्त

की एक मात्र मैत्रिणी थी। वह इन्हींके पास फ्रेंच भाषा में अपना अन्तिम पत्र भेज सकी।

"ए शीफ़ ग्लीण्ड-इन-फ्रेंच फ़ील्ड्स" विलायत में समालोचना के लिए भेजा गया था। वहां एग्ज़ामिनर नामक पत्र बड़ा प्रसिद्ध है। सन् १८७६ के अगस्त मास में समालोचक मि. एडमण्ड गोसी कहीं उस पत्र के कार्यालय में जा पड़े। उस समय यह महाशय, समालोचना-योग्य उत्तम पुस्तकों की आलोचना न प्रकाशित होने से, प्रकाशकों की निन्दा कर रहे थे कि चिट्ठीरसां ने, हाथ में एक पैकेट दिया। उसके भीतर दो सौ पृष्ठ की एक छोटी सी पुस्तक थी। उसमें भूमिका या समर्पण कुछ भी नहीं था। वह रद्दीख़ाने में फेंक देने योग्य थी। किन्तु एग्ज़ामिनर के सम्पादक डब्ल्यु मिण्टो (W. Minto) ने मि. एडमण्ड गोसी के अनिच्छित हाथों में उस पुस्तक के ज़बरदस्ती देकर कहा—"देखिये, कदाचित् इसमें कोई विचित्रता दिखलाई पड़े"। मि. एडमण्ड गोसी उस पुस्तक की सूरत ही देखकर निराश हो गये थे। परन्तु उसके खोलते ही जब उनकी दृष्टि निम्नलिखित पदों पर पड़ी तब उनके आश्चर्य और आनन्द की सीमा न रही।

पाठकों के देखने के लिए वे पद हिन्दी अनुवाद सहित नीचे दिये जाते हैं।

Still barred thy doors ! The far East glows,
The morning wind blows fresh and free.
Should not the hour that wakes the rose
Awaken also thee ?
All look for thee, Love, Light and Song ;
Light in the Sky deep red above,
Song in the lark of pinions strong
And in my heart true Love.
Apart we miss our nature's goal,
Why strive to cheat our destinies ?
Was not my love made for thy Soul ?
Thy beauty for mine eyes ?
No longer sleep
Oh, listen now !
I wait and weep
But where art thou ?

अभी तक तेरे किवाड़ बन्द हैं। सुदूर पूर्व दिशा चमक रही है। प्रातःकालीन समीर नवीन और स्वच्छन्द रूप से बह रहा है। क्या वह समय, जो गुलाब के जगाता है, तुमको भी नहीं जगावेगा।

प्रेम, प्रकाश और सङ्गीत सब तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रकाश तो ऊपर लाल आकाश में, सङ्गीत मज़बूत परवाले लवा में, और सच्चा प्रेम मेरे हृदय में।

हम दोनों वियोगी होने से प्रकृति के उद्देश्य के नहीं प्राप्त कर सकते (तो फिर) क्यों अपने अपने भाग्य के धोखा देने की हम चेष्टा करें? क्या मेरे प्रेम की उत्पत्ति तेरी आत्मा के लिए नहीं थी और तेरी सुन्दरता मेरी आँखों के लिए? अब अधिक न सोओ। अहा, सुनो तो! मैं प्रतीक्षा करती हूं और रोती हूं। पर तू कहां है?

तरुदत्त का अन्तिम दिन अन्धकारमय था। अब वह लिखना छोड़कर केवल पुस्तकावलोकन में दिन बिताने लगी। उसके मरने के बाद उसका बनाया हुआ "एनशियण्ट बैलेड्स् एण्ड लीजेण्ड्स आफ़ हिन्दुस्तान" (Ancient Ballads and Legends of Hindustan) मि. एडमण्ड गोसी द्वारा प्रकाशित हुआ। अङ्गरेज़ी कविता में तरुदत्त ने जिस प्रकार पौराणिक कथाएं वर्णन की हैं वह प्रशंसनीय है। इक्कीस वर्ष छ महीने इस संसार में रहकर उसने जो काम किया उसे देखकर आश्चर्य तो अवश्य होता है; किन्तु ईश्वर की सृष्टि में सब बातें सम्भव और आश्चर्यमय हैं। उक्त पुस्तक में सावित्री, लक्ष्मण, सीता, ध्रुव, प्रह्लाद, सिन्धु इत्यादि कविताएं बड़ी सुन्दरता और सरसता के साथ लिखी गई हैं।

३० जुलाई का दिन तरुदत्त के लिए शोकमय था। उसने फ्रेंच भाषा में एक बहुत ही करुणापूरित पत्र प्रवासिनी लेडी क्लेरिसा के लिखा। उसीके एक मास बाद १८७७ के ३० अगस्त को

तरदत्त अपनी अटल कीर्त्ति के छोड़कर इस संसार से प्रयाण कर गई।

उमाशङ्कर द्विवेदी।

सवाई जयसिंह।

सरस्वती की इस संख्या में जयपुर के निर्म्माता जयसिंह का चित्र दिया जाता है। इनके पहले जयसिंह (मिरज़ा राजा) नामक एक और नरेश आमेर के सिंहासन के सुशोभित कर चुके थे। अतएव इन दोनों नरेशों में पृथक्त्व सूचित करने के लिए इनके नाम के पहले "सवाई" शब्द का प्रयोग किया गया। सवाई जयसिंह १६९९ ईसवी में गद्दी पर बैठे और ४४ वर्ष राज्य करके १७४३ ईसवी में परलोकगामी हुए।

जब सवाई जयसिंह ने आमेर का राज्य पाया तब औरङ्गज़ेब की मृत्यु में ६ वर्ष शेष थे। उन्होंने शाही सेना के सेनानीत्व पद पर अधिष्ठित होकर दक्षिण में कई वार वीरता और योग्यता के काम किये। जब औरङ्गज़ेब की मृत्यु हुई तब तख़्त के लिए झगड़ा उठ खड़ा हुआ। उसमें इन्होंने आज़मशाह के बेटे का पक्ष लिया। परन्तु धवलपुर की लड़ाई में इनके पक्षवालों का पराजय हुआ और शाह आलम (बहादुरशाह) के देहली का तख़्त मिला। विपक्षी का पक्ष लेने के कारण बादशाही सेना ने आमेर पर चढ़ाई करके उसे छीन लेना चाहा। परन्तु जयसिंह ने मुसल्मानों की दाल नहीं गलने दी। उन्होंने खड्ग हाथ में लेकर अपनी राजधानी में प्रवेश किया और मुसल्मानों के विफल मनोरथ होकर लैाट जाना पड़ा।

इस समय देहली की बुरी दशा थी। अनेक झगड़े फ़साद होते थे। राज्य की सीमा प्रतिदिन कम होती जाती थी। बूंदी और उदयपुर से जयसिंह की भीषण शत्रुता थी; इधर बादशाह के भी ये कोपभाजन हो गये थे। अतएव इनको समय समय पर अनेक युद्ध, अनेक विवाद और अनेक प्रकार के साम, दाम, दण्ड, भेद के कामों में योग देना पड़ा। उनके वीरत्व, क्षत्रियत्व, नीतिपटुत्व इत्यादि विषयों में कुछ कहने के लिए इस लेख में स्थान नहीं है। उनके चित्र-सम्बन्ध में उनका कुछ परिचय करा देना ही बस है।

दो काम करके सवाई जयसिंह अपना नाम अमर कर गये। एक तो उन्होंने जयपुर के निर्म्माण किया; दूसरे मानमन्दिर बनवाकर ज्योतिष विद्या की उन्होंने विशेष उन्नति की। हिन्दोस्तान में जयपुर ही एक ऐसा शहर है जो नियमानुकूल बना है; जिसकी सड़कें ख़ूब लम्बी चैाड़ी हैं; जहां सड़कों ने परस्पर एक दूसरी के यथास्थान काटा है। जयसिंह के दरबार में वङ्गदेश का रहनेवाला विद्याधर नामक एक विद्वान् था। उसीने इस शहर का नक़शा तैयार किया था। टाड साहब, राजस्थान में, ऐसा ही लिखते हैं। जयपुर की नींव १७२८ ईसवी में पड़ी थी।

जयसिंह के विद्या का बड़ा व्यसन था। ज्योतिषविद्या पर उनका सविशेष प्रेम था। उन्होंने देहली, जयपुर, उज्जैन, बनारस और मथुरा में मानमन्दिर बनवाकर वहां अपने बनाये यन्त्रों से यन्त्रशालायें स्थापित कीं। इन यन्त्रों की सहायता से ज्योतिषसम्बन्धी जो बातें ज्ञात होने लगीं उनके देखकर बड़े बड़े विद्वान् चकित हो गये। इनके पाण्डित्य की यहां तक ख्याति हुई कि देहली के बादशाह महम्मदशाह तक ने इनसे ज्योतिष विषयक कई काम लिए। सुनते हैं, पोर्चुगीज़ पादरी मैन्युयल ने इनसे कहा कि पोर्चुगल में ज्योतिष विद्या में बहुत कुछ उन्नति हो रही है। अतएव इन्होंने कई विद्वानों के उसके साथ पोर्चुगल के राजा यमैन्युअल के पास भेजा। यमैन्युअल ने झेबियर डि सिल्वा नाम के एक आदमी के जयपुर रवाना किया। उसने जयसिंह के पोर्चुगल के प्रसिद्ध ज्योतिषी डि ला हायर के सिद्धान्त समझाये।

पोर्चुगल के ज्योतिषी के सिद्धान्तों की परीक्षा जब जयसिंह ने की तब उनमें थोड़ी सी भूल निकली। समरक़न्द के शाही ज्योतिषी के सिद्धान्त भी जयसिंह को भ्रमपूर्ण मिले। जिन यन्त्रों का आविष्कार जयसिंह ने किया वे सचमुच अद्भुत और आश्चर्य-जनक हैं। ये यन्त्र अभी तक उनके मान-मन्दिरों में कहीं कहीं विद्यमान हैं। जो मानमन्दिर जयपुर में है उसकी नये सिरे से मरम्मत हुई है। उस की यन्त्रशाला बहुत अच्छी दशा में है; और सब यन्त्र अपना अपना काम कर सकते हैं। जयसिंह के सिद्धान्तों और यन्त्रों की परीक्षा डाकृर डब्ल्यू हण्टर इत्यादि कई पाश्चात्य विद्वानों ने की और सबको प्रायः निर्भ्रान्त पाया। महाराजा जयसिंह के समय की बनाई हुई सारिणी से ज्योतिषी लोग अभी तक काम लेते हैं। ज्योतिष और गणित विद्या में वे अद्वितीय थे। उन्होंने अनेक विद्वानों को अपने आश्रय में रक्खा था। हिन्दू, मुसल्मान, जैन, सब जाति के विद्वानों का वे आदर करते थे। विद्याधर पण्डित जैन ही था। उसीके सहयोग और सहाय से जयसिंह इतने मानमन्दिर बनाकर ज्योतिष विद्या की इतनी उन्नति कर सके।

जयसिंह के भाई विजयसिंह ने आमेर का राज्य छीन लेने की युक्ति लड़ाई थी। देहली से भी उसे पूरी पूरी सहायता मिलने का डौल था। परन्तु जयसिंह ने उसे बड़े ही कौशल से क़ैद कर लिया और फिर निष्कंटक होकर वे राज्य करते रहे।

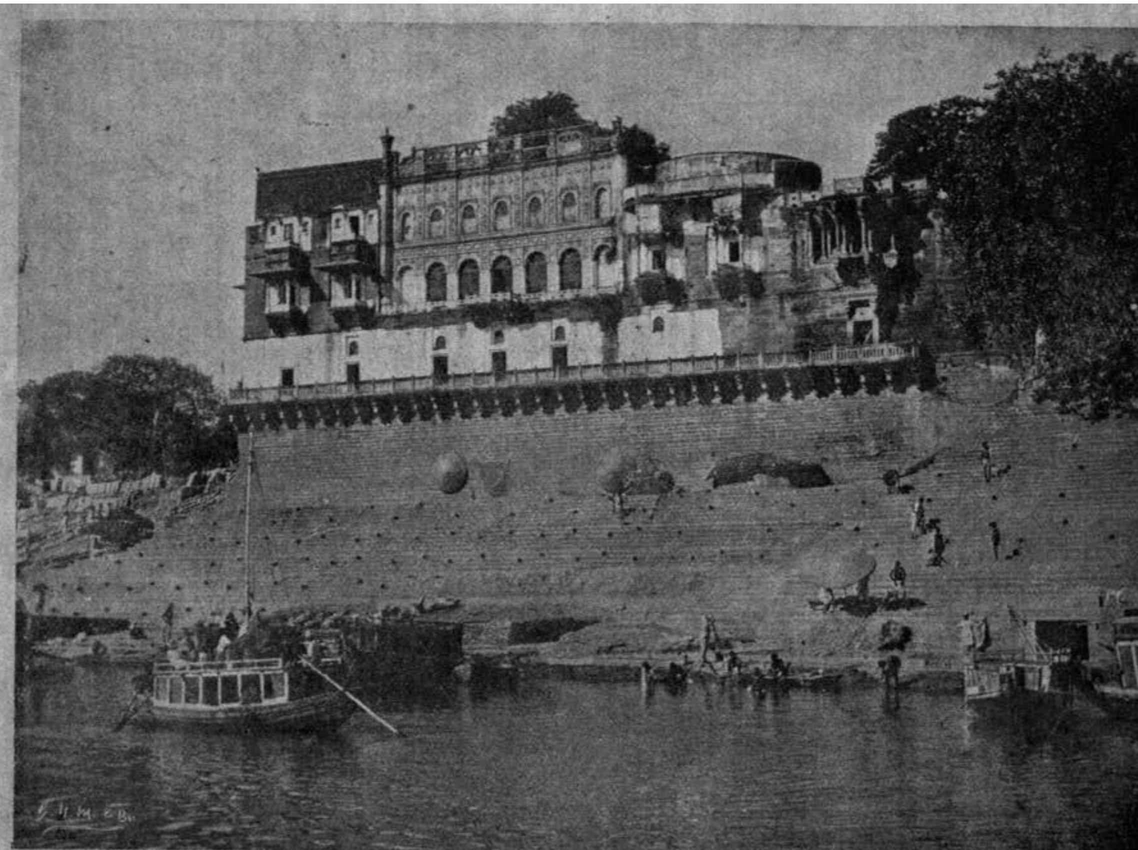
सुनते हैं जयसिंह को नशे का बड़ा शौक़ था। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ भी करने का विचार किया था। मरने पर उनकी तीन रानियां और बहुत सी उपरानियां उनके साथ सती हो गईं।

सवाई जयसिंह की मृत्यु के अनन्तर उनकी इकट्ठा की हुई पुस्तकों की बड़ी दुर्दशा हुई। उनमें से कुछ तो मूर्ख और अनधिकारी मनुष्यों को दे दी गईं। वे गली गली बेची गईं।

आँख।

[संख्या ३ के आगे]

पहले, दूरता स्वयं नहीं दिखाई दे सकती, क्योंकि यह ऐसी रेखा है जिसका लम्बाव में आंख की तरफ़ होने के कारण एक छोर रेटिना पर है और दूसरा अदृश्य है। किन्तु हम इस को देखते हैं; इसलिए यह किसी दूसरे भाव की मध्यस्थता से मन को सूचना द्वारा ज्ञान देती होगी, क्योंकि मन भावों के द्वारा ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है। उस समय के लोग कहते थे कि "चाक्षुष धुरी" कोण बनाती है और उससे दूरत्व का ज्ञान होता है। किन्तु पदार्थों को दूर देखते समय तो हमें किसी कोण का ज्ञान नहीं होता। दोनों आंखों से किसी पदार्थ को देखकर जो हम उसकी दूरी का फ़ैसला करते हैं सो केवल अनुभव का फल है और इसमें ३ सहायक हैं। (१) आंख में फेर फार की स्नायु-सम्बन्धी भावना; (२) मन में, धुंधलेपन और दूरता के जो भिन्न भिन्न दरजे हैं उनमें, सदा यह ज्ञान होने से कि पदार्थ का धुंधलापन दूरता के साथ बदला करता है, आदत से माना हुआ सम्बन्ध और (३) दूर-दृष्टि के समय आंख पर ज़ोर पड़ने की भावना। ये तीनों भाव मनमें अधिक या न्यून दूरता का विचार उत्पन्न करते हैं। यदि कोई जन्मान्ध देखने में समर्थ हो जाय, तो पहले पहल उसको नज़र से दूरता का ज्ञान न होगा; सूर्य और तारे, सुदूर और सुनिकट पदार्थ उसे सबही आंख में, अर्थात् मन में, प्रतीत होंगे। चक्षु वास्तव में रङ्ग मात्र का प्रत्यक्ष कराती है। जैसे कान से दूरता का ज्ञान नहीं होता वैसे इससे भी नहीं होता; दोनों द .ाओं में त्वचा की पहली भावनाओं से ही दूरता का अनुमान होता है। बहुत काल तक इस बात का अनुभव करते रहने से कि त्वचा से आने हुए कुछ भावों (दूरता स्पृश्य, आकार, स्थूलता आदि) के साथ आंख के



मानमन्दिर—काशी।

भाव भी संबद्ध हैं, मैं, आंख के उन भावों के उपस्थित होने पर, उसी दम अनुमान करता हूं कि कौन से त्वचा के भाव, अभ्यास के अनुसार, अब मिलेंगे। सो यदि ठीक ठीक कहा जावे तो मैं न तो दूरता देखता हूं; न किसी पदार्थ को किसी दूरी पर देखता हूं। वह विस्तार और आकार जो मैं आंख से देखता हूं, त्वचा से छुए हुए आकार और विस्तार से बहुत भिन्न हैं।

दूसरे। जैसे हम दूरी देखते हैं, वैसेही हम आकृति देखते हैं। दृश्य आकृति, जो दिखाई देने वाले पदार्थ के सम्बन्ध में अपना स्थान बदलती ही रहती है, हमें स्पृश्य आकृति की सूचना देती है। स्पृश्य आकृति ही सच्ची है (१) दृश्य पदार्थ की आकृति वा विस्तार (२) उसकी बाह्य रेखाओं की सफाई वा झिलमिलाहट, (३) उसके रङ्गों की तेज़ी वा धुंधलापन (४) बीच में स्थित पदार्थों का आकार, संख्या और स्थिति और (५) आंख के विन्यास-विशेष के विशेष संज्ञान—ये सब चाक्षुष चिन्ह हैं जो जीवों को सचेत करते हैं कि अपने देह को अमुक पदार्थ से, जो दूरी पर है, छुआने पर क्या भला वा बुरा फल होगा। दिखाई देनेवाले चिन्ह और स्पृश्य आकृतियों में यह सम्बन्ध सहज नहीं है। हम किसी पदार्थ की ठीक ठीक आकृति नहीं देखते, किन्तु कुछ रङ्गदार बिन्दु दिखाई देते हैं, जिनकी संख्या, अवलोकन क्षेत्र में, एक पदार्थ के लिए उतनी ही होने के कारण, हमें आंख से आकृति-ज्ञान का अभ्यास हो गया है।

तीसरे। अपने देह से भिन्न पदार्थों की सच्ची स्थिति वास्तव में अदृश्य है। कई बेर यह प्रश्न उठाया गया है, कि यदि रैटिना पर छायाचित्र उलटा होता है, तो हम पदार्थों को खड़ा क्यों देखते हैं? इस कठिनाई का कारण यह है कि मैं नहीं समझता कि स्पृश्य पदार्थ और दृष्टि से पाये हुए ज्ञान में कोई सम्बन्ध नहीं है। जो कुछ मैं देखता हूं वह प्रकाश और रङ्गों का भेद विशेष है; जो कुछ मैं छूता हूं वह कठोर वा मुलायम, गरम वा ठंडा, खरखरा या मृदु है। उन भावों का इन भावों से भला क्या संबन्ध है? 'ऊंचा' 'नीचा' 'ऊपर' 'तले' यह भेद हमको त्वक् से मालूम होता है। पदार्थ के चित्र में कोई गड़बड़ नहीं होती जब तक उसमें दृश्य पृथ्वी से दृश्य पैर समीप, और दृश्य सिर दूर प्रतीत होते हैं। अभ्यास से, ये अपने मुक़ाबिले के त्वक् के संवेदनों को सुझा देते हैं। वे पदार्थ, जिनका चित्र रेटिना के निचले भाग पर पड़ता है, आंख उठाने से साफ़ देख पड़ते हैं। इसी लिए हम उन्हें "ऊपर" समझते हैं। यों ही वे पदार्थ जो आंख के ऊपरी भाग पर चित्रित हैं, आंख नीची करने से साफ़ दिखाई देते हैं; अतएव वे "नीचे" माने जाते हैं। "बर्कले" अपनी मीमांसा को यह सिद्ध करके समाप्त करते हैं कि "विस्तार, आकृति आदि आंख से जाने हुए भाव त्वक् के उन भावों से बिलकुल भिन्न हैं जो इन्हीं नामों से प्रसिद्ध हैं। और दोनों इन्द्रियों में कोई भाव भी समान नहीं है। क्योंकि मैं आलोक और रङ्ग के सिवा कुछ नहीं देख सकता और वह, वा उनके अवान्तर भेद कदापि त्वक् के भाव नहीं है। हम स्पृश्य रेखा वा सतह में दृश्य रेखा वा सतह नहीं जोड़ सकते। इससे सिद्ध होता है कि ये दोनों भिन्न हैं। यदि अन्धे आदमी को आँख हो जाय तो वह उन पदार्थों को नहीं पहचानेगा जो उसे त्वक् से परिचित हैं। जैसे शब्द भावों के लिए चिन्ह हैं वैसे ही दृश्य आकार स्पृश्य आकारों के चिन्ह हैं। किन्तु यह प्रकृति की भाषा सर्वसाधारण और सरल है; क्योंकि बहुत जल्दी बाल्यावस्था में ही सीख ली जाती है। इसका फल यह है कि हम संसार के व्यवहारों में सचेत हो जायँ। दृष्टि वास्तव में "दूर-दृष्टि" है; त्वक् से जो भाव प्रतीत होते हैं उन का आभास दृष्टि से हो जाता है।

[असमाप्त।

पुस्तक-परीक्षा ।

नीलवसना सुन्दरी । फ्रांस उपन्यासों का घर है । वहां तरह बेतरह के उपन्यास निकला करते हैं । और थोड़े नहीं; सैकड़ों-हज़ारों । स्त्रियां तक ग़ज़ब के उपन्यास लिखती हैं । एम० ज़ोला के उपन्यास मनोविकारों के बहुत ही अधिक उद्दीपक हैं; यहां तक कि कोई कोई अश्लीलता की हद के पास तक भी पहुँच गये हैं । इन उपन्यासों के अङ्गरेज़ी-अनुवाद का प्रचार इङ्गलैण्ड में रोक दिया गया है । परन्तु इन्हीं की फ्रांस में बेहद और बेहिसाब महिमा है । इसी फ्रांस देश में जासूसी क़िस्सों का पहले पहल प्रचार हुआ । वहां से और और देशों में भी वह पहुँचा । बँगला में भी ऐसी ऐसी कहानियां निकलनी शुरू हुईं और चाह भी उनकी लोगों को ख़ूब हुई । बाबू पांचकौड़ी दे ने इस जासूसी-साहित्य में बड़ा नाम पैदा किया । गहमर (ज़िला ग़ाज़ीपुर) के निवासी बाबू गोपालराम की बदौलत इन जासूसी उपन्यासों का मज़ा हिन्दी जाननेवालों को भी नसीब हो गया । आप पांच वर्ष से जासूस नाम की एक मासिक पुस्तक निकाल रहे हैं । इसकी क़ीमत २) साल है । इस पुस्तक को बहुत लोग बड़े चाव से पढ़ते हैं ।

यह नीलम परी, यह नीलाम्बरा रमणी, यह नीलवसना सुन्दरी भी बाबू गोपालराम ही की लेखनी से निकली है । पूर्वोक्त बाबू पांचकौड़ी दे की, इसी नाम की, बङ्गला पुस्तक का यह हिन्दी तरजुमा है । यह भी एक जासूसी क़िस्सा है । इसका रूप-रङ्ग और आकार प्रकार सब अच्छे हैं । छपाई भी अच्छी है; कागज़ भी अच्छा है । इसमें कई एक अच्छी अच्छी तसवीरें भी हैं । उनमें ख़ास ख़ास औपन्यासिक घटनाओं का दृश्य चित्र द्वारा दिखलाया गया है । भाषा रोज़मर्रा के बोलचाल की है । बहुत सीधी है; बहुत बामुहाविरा है । कोई कोई मुहाविरा तो ऐसा अच्छा है कि उसके कारण भाषा में सञ्जीवनी शक्ति आ गई है; वह ख़ूब सजीव हो उठी है । इसे निकले बहुत दिन हुए; एक तरह से यह पुरानी हो चुकी; तथापि हमने इसे पढ़ा । कहानी मनोरञ्जक है । पढ़ने में दिल लगता है । मनोमालिन्य, यदि हो तो, जाता रहता है । पर इसमें शुरू से आख़िर तक प्रायः आशिक़ माशूक़ों ही के झमेले हैं । इनसे जिन्हें नफ़रत है वे शायद इसे पसन्द न करें । इसमें एक जगह लिखा है—"इन प्रेम-पचड़ों का मज़ा इस गँवार गोपाल को कहां मालूम है ?" इसे पढ़कर हमें हँसी आ गई ।

इसकी मूल कथा की दो एक बातें हमारी समझ में नहीं आईं । एक तो ज़हीरुद्दीन का अपनी व्यभिचारिणी बीबी सुजान के पीछे रात को १२ बजे दौड़ना, उसे पकड़वाकर भी उसका कुछ भी पारिपत्य न करना, और उसका सिर्फ़ हार उतार कर घर वापस आना । दूसरी, बारहवें बयान में, देवेन्द्र पर एक अँधेरी गली में आक्रमण करके, वहीं मुबारक का पेंसिल से एक लम्बी चिट्ठी लिखकर देवेन्द्र की जेब में डालना । पर इसके लिए मूल ग्रन्थकार ही यदि दोषी हो तो हो सकते हैं ।

बाबू गोपालराम ऐसी ऐसी किताबें लिखें । इनसे अगर और कुछ न होगा तो हिन्दी पढ़ने की ओर लोगों की रुचि अवश्य होगी । पर हम उनसे एक विनय करना चाहते हैं । वह यह कि साल में यदि वे १२ किताबें ऐसी लिखें तो एक आध और तरह की भी लिखने की कृपा करें । बँगला में अनेक अच्छी अच्छी पुस्तकें-नाटक उपन्यास और इतिहास आदि की-हैं । उनमें से यदि वे साल में एक का भी अनुवाद करके प्रकाशित करदें तो बहुत उपकार हो । उन्हें लिखने में व्याकरण के नियमों का भी कुछ अधिक ख़याल रखना चाहिए और चित्रों की बनावट वर्णन के अधिक अनुकूल होना चाहिए ।

नीलवसना का मूल्य २) है । पर जासूस के ग्राहकों को वह उपहार में दी जाती है । उपहार के नियम पूछने पर मालूम होंगे ।

✱

भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास। श्रीयुक्त रमेशचन्द्र दत्त कृत अङ्गरेज़ी ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद का यह पहला भाग है। अनुवादक इसके बाबू गोपालदास हैं। पर यह हमें नहीं मालूम कि किसने, कहां से ग्रैार किस लिए इसे हमारे पास भेजा है। यह अनुवाद "हिन्दी-सम्बादपत्रों के सम्पादकों के सादर समर्पित" किया गया है। किन्तु सरस्वती सम्वादपत्र (News-paper) नहीं है। इस लिए यह उसके पास नज़र के तैार पर भी नहीं आ सकता। खैर, कुछ भी हो, भेजनेवाले के धन्यवाद देकर हम इसे अपने संग्रह में रक्खे लेते हैं।

❋

Notes on Vegitarianism. अङ्गरेज़ी में यह एक छोटी सी पुस्तक है। इसका सम्पादन बाबू रामप्रसाद वर्म्मा ने किया है। डेढ़ आने इसके दाम हैं। अजमेर के वैदिक प्रेस में यह छपी है। इसमें मांस खाने के दोष ग्रैार न खाने के गुणों का सप्रमाण विवेचन है।

❋

धर्म्म पत्र। मेरठ की सनातन-धर्म्म-रक्षिणी सभा इस नाम का एक मासिक पत्र निकालती है। इसके ६ अङ्क हमारे पास आये हैं। इसका कुछ अंश हिन्दी ग्रैार कुछ उर्दू में छपता है। दाम, वार्षिक १॥) है। इसकी हिन्दी अच्छी नहीं है। ग्रैार ग्रैार बातों में भी उन्नति की आवश्यकता है।

❋

हिन्दी-बँगला-वर्णमाला। वृन्दावननिवासी लाला राधारमणदास कृत। दाम दे। आने। इसको पढ़ने से बँगला सीखने में सहायता मिल सकती है। पर, हमारी समझ में, इसमें बहुत सी भूलें हैं। 'कृश' का अर्थ किसान नहीं, दुबला है; 'इहारा' का अर्थ इसका नहीं, ये लोग है; 'पाई' का अर्थ मिला नहीं, पाता हूं या पाऊं है—इत्यादि।

❋

मारवाड़ियों से निवेदन। "सुदर्शन" सम्पादक पण्डित माधवप्रसाद मिश्र लिखित। वैश्योपकारक कार्य्यालय कलकत्ता से वितरित। मारवाड़ियों के यहां विवाह में गालियां गाई जाती हैं ग्रैार ब्राह्मणों की स्त्रियों से पैरों में मेंहदी लगवाई जाती है। इस कुरीति के उठा देने के लिए यह निवेदन किया गया है। मारवाड़ियों के चाहिए कि वे इसे उठादें। इसके उठाने में उनकी बड़ाई ग्रैार रखने में बुराई ही नहीं, किन्तु निन्दा भी है।

❋

आर्ष-ग्रन्थावली। पण्डित राजाराम ने लाहैार से इस नाम की एक मासिक पुस्तक, दिसम्बर १९०४ से, निकाली है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है। इस में वेद, उपनिषद्, धर्म्मसूत्र, गृह्यसूत्र ग्रैार श्रौतसूत्रों के संस्कृत ग्रैार हिन्दी भाष्य छपते हैं। उद्योग अच्छा है।

❋

डाक्टर वर्म्मन की दवाइयां। कलकत्ते के डाक्टर एस० के० वर्म्मन ने हमारे पास अपनी दवाइयों का एक छोटा सा बक्स भेजा है। इसमें हैज़ा, खांसी, कमज़ोरी, कोष्टबद्ध इत्यादि छ रोगों की दवाइयां हैं। बक्स बहुत सुन्दर है। दे। एक दवाइयों की परीक्षा करने पर मालूम हुआ कि वे भी अच्छी हैं। यह बक्स, घर में, हर गृहस्थ के रखने लायक़ है।

❋

वार्षिक विवरण। आरा में एक नागरी-प्रचारिणी सभा है। यह भी हिन्दी के फ़ायदा पहुँचाना चाहती है। यह उसका तीसरा वार्षिक विवरण है। इसमें हिन्दी-भाषा का साल भर का संक्षिप्त इतिहास है। इसके सभासदों की संख्या बढ़ रही है। इसकी राय है कि सरस्वती में वेद-विरुद्ध लेख प्रकाशित होते हैं ग्रैार किसी किसी लेख में अरबी फ़ारसी के शब्द रहते हैं। धन्यवाद!

❋

कविवर विप्रचन्द्र की रचना। पण्डित अक्षयवट मिश्र जी कलकत्ते के श्रीविशुद्धानन्द विद्यालय के प्रधान पण्डित हैं। आपने हमारे पास अपनी बनाई हुई संस्कृत की तीन पुस्तकें भेजी हैं। एक का नाम

स्तोत्रकुसुमाञ्जलि है। इसमें हिन्दी-अनुवाद सहित रामचन्द्र की स्तुति है। इसकी कविता बहुत ही सरस और मनोरम है। दूसरी पुस्तक का नाम पुष्पोपहार है। इसमें डुमरांव राजधानी के सज्जन-शिरोमणि पण्डित चन्द्रमणि शर्म्मा जी के स्वभाव आदि वर्णन पर २५ श्लोक हैं। इसकी भी कविता अच्छी है। श्लोकों का हिन्दी अनुवाद इसमें भी है। तीसरी पुस्तक का नाम श्रीराधामाधव-विलास है। इसमें संस्कृत दोहा छन्द में राधामाधव की लीला वर्णित है। यह पुस्तक औरों से बड़ी है; इसमें पांच सैा से ऊपर दोहे हैं। काग़ज़, छपाई इत्यादि सब उत्तम है। पर हिन्दी अनुवाद इसमें नहीं है। कविता इसकी भी अच्छी है। जहां जहां प्राचीन संस्कृत पद्यों की छाया लेकर कविता की गई है वहां और भी अधिक मनोरमता आ गई है। उदाहरणार्थ नैषध के चैाथे सर्ग का ग्यारहवां श्लोक देखिए—

निविशते यदि शूकशिखापदे सृजति सा कियतीमिव न व्यथाम्।
मृदुतनोर्वितनोतु कथन्न तामवनिभृत्तु निविश्य हृदिस्थितः॥

इसीकी छाया लेकर विप्रचन्द्र जी ने बहुत ही अच्छा दोहा कहा है। सुनिए—

पदेऽपि विद्धं कण्टकं बहु दुःखं विदधाति।
वद सखि हृदिविद्धो जनः किं दुःखं न ददाति? ४७०

❀

सरस्वती पञ्चाङ्ग। शीतलागली, आगरा, के पण्डित व्रजनाथ शर्म्मा ने इसे प्रकाशित किया है। यह सं० १९६२ का पञ्चाङ्ग है और डेढ़ आने के बिकता है। छपाई साफ़ है। पञ्चाङ्ग काम का है।

❀

स्त्री-शिक्षा-विचार। बाबू वैद्यनाथ गुप्त, उपमन्त्री, आर्यसमाज, मिर्ज़ापुर कृत। दाम दो आने। इस छोटी सी पुस्तक में यह दिखलाया गया है कि स्त्रियों के न पढ़ाने से क्या हानि और पढ़ाने से क्या लाभ है। लेखक ने इसे अपने पिता के अर्पण किया है और भूमिका में लिखा है कि मेरी उमर बहुत कम है। हमारी प्रार्थना है कि कुछ उमर और बड़ी होने पर और तदनुसार विद्वत्ता भी कुछ और बढ़ जाने पर लेखक महाशय इस पुस्तक के ज़रा और बढ़ा कर लिखें जिसमें यह पहले से अच्छी हो जाय।

मनोरञ्जक श्लोक।

एक पण्डित किसी राजा के यहां बहुत दिन तक ठहरे रहे। बिदाई न हुई। एक दिन सभा में आप खिन्नबदन बैठे थे। राजाने पूछा पण्डित जी, क्या सोच रहे हो? तब आपने यह श्लोक पढ़ा—

सुस्वादुयुक्तानि सुकोमलानि पत्नीकराग्राङ्गुलिपीडितानि।
किं किं ददामीति सुभाषितानि स्मरामि राजन् गृहभोजनानि॥

'और क्या क्या दूं?' इस तरह मीठे मीठे बचनों के सुनते हुए, ख़ूब स्वादिष्ट, ख़ूब कोमल और पत्नी के करकमल से ख़ूब पीड़नपूर्वक बनाये गये, अपने घर के भोजनों का, राजा साहब, मुझे स्मरण हो रहा है।



दमयन्ती और हंस।
रविवर्म्मा कृत।

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ६] जून, १९०५ [संख्या ६

विविध विषय।

लाहौर में दयानन्द सरस्वती के नाम से जो कालेज है उसके मालिकों ने एक बहुत ही अच्छा काम किया है। काम बिलकुल नया है और बहुत उपयोगी है। इस कालेज में जापानी भाषा सिखलाने का प्रबन्ध हुआ है। इसके लिए जापान से एक जापानी अध्यापक भी आगया है। जो लोग कल-कारख़ाने का काम या कला-कौशल आदि सीखने जापान जाते हैं उन को पहले कुछ दिन तक जापानी भाषा सीखना पड़ता है। इससे उनका बहुत सा समय परकीय देश में योंहीं नष्ट जाता है। यह बात अब न होगी। जिसे जापान जाना होगा वह यहीं जापानी भाषा सीख कर जायगा। इससे यह भी लाभ होगा कि जापान पहुँचते पहुँचते वह जापानियों से उनकी भाषा में बात चीत कर सकैगा और भाषा न जानने से जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उनसे बचाव होगा।

***

एक बात की और बड़ी ज़रूरत है। वह भी यदि लाहौर के देशहितैषी और उद्योगी पुरुष कर दें तो बड़ी बात हो। वह जापानियों की जू-जित्सू (युयुत्सु ?) नामक कसरत है। इस कसरत की बड़ी तारीफ़ हो रही है। इस पर अमेरिकावालों ने बड़ी बड़ी किताबें लिखडाली हैं। अमेरिका और इङ्गलैण्ड आदि में इसको शिक्षा देने के लिए स्कूल भी खुल गये हैं। वहां लड़के, लड़कियां, स्त्री, पुरुष, सब इस कसरत को सीखते हैं। अमेरिका की फ़ौज तक में इसके सिखलाने का प्रबन्ध हुआ है। इससे शरीर के पट्ठे इतने मज़बूत हो जाते हैं और ऐसे दाँव पेंच मालूम हो जाते हैं कि एक दुबली पतली स्त्री एक मज़बूत और कसरती जवान को गिरा सकती है।

***

अभी थोड़े दिन की बात है। रूस-जापान की जो लड़ाई हो रही है उसमें मकदन के पास, रूस और जापान की फ़ौज का कुछ भाग, मैदान में, एक दूसरे के सामने आ गया। रूसी अफ़सर ने देखा कि जापानी अफ़सर देखने में ठिंगना, दुबला और कमज़ोर है। इससे उस जापानी अफ़सर के साथ

अकेले लड़ने के इरादे से वह अपनी फ़ौज से अलग हुआ। यह देख कर जापानी अफ़सर ने भी वैसा ही किया। दोनों अफ़सर पास पास आ गये और तलवार से दाँव पेंच खेलने लगे। दो ही चार मिनट में जापानी ने एक ऐसा प्रहार किया कि रूसी अफ़सर की तलवार टूट कर ज़मीन पर जा गिरी। अब यदि जापानी चाहता तो रूसी का सिर धड़ से अलग कर देता। पर जापानी अन्याय करना नहीं जानते। वे धर्म्म-युद्ध करते हैं। अतएव जापानी अफ़सर ने भी अपनी तलवार फेंक दी और वह रूसी से शस्त्रहीन होकर भिड़ गया। मल्लयुद्ध होने लगा। पर जापानी के हाथ लगाने की देरी थी कि रूसी अफ़सर ज़मीन पर धड़ाम से चित आ गिरा। यह देखकर दोनों तरफ़ की फ़ौजों ने जापानी के लिए जयध्वनि की। इसके बाद दोनों अफ़सर अपनी अपनी फ़ौज में शामिल हो गये और लड़ाई शुरू हुई। इस मल्लयुद्ध में जापानी की जो जीत हुई वह जू-जित्सू के ही प्रताप से हुई।

***

फोर्ट लाकहार्ट और गुलिस्तान के बीच में शेरगढ़ी नामकी एक जगह है। १८९७ ईसवी में जब हमारे प्रभु अङ्गरेज़ों की लड़ाई आफ़रीदियों से जारी थी, ३६ नम्बर सिक्खों की पल्टन के २१ सिपाही शेरगढ़ी की रक्षा कर रहे थे। अचानक उनपर सरहद्‌वालों ने धावा किया। पर बहादुर सिक्ख ज़रा नहीं घबराये। क़ैद हो जाने की अपेक्षा मर जाना उन्होंने अच्छा समझा। बड़ी वीरता से उन्होंने शत्रुओं का सामना किया और जीते जी उनको शेरगढ़ी के भीतर नहीं धँसने दिया। अन्त में वे इक्कीस के इक्कीस वीर लड़ते लड़ते काम आ गये। इस अद्‌भुत शौर्य से प्रसन्न होकर गवर्नमेण्ट ने सिक्खों के प्रधान शहर अमृतसर में, बीस हज़ार रुपये लगाकर सङ्गमरमर की एक सुन्दर इमारत, उन वीर सिक्खों की यादगार में, बनवाई है। इमारत बहुत सुन्दर है। उसके दोनों तरफ़ सामने, दो पत्थर लगे हैं। उन पर उन बहादुर सिपाहियों के नाम और उनकी तारीफ़ खुदी हुई है। एक पत्थर पर जो लेख है वह अङ्गरेज़ी में है; और दूसरे पर जो है वह गुरमुखी में। इस स्मारक मन्दिर का चित्र इस संख्या के साथ पाठकों को समर्पित है।

***

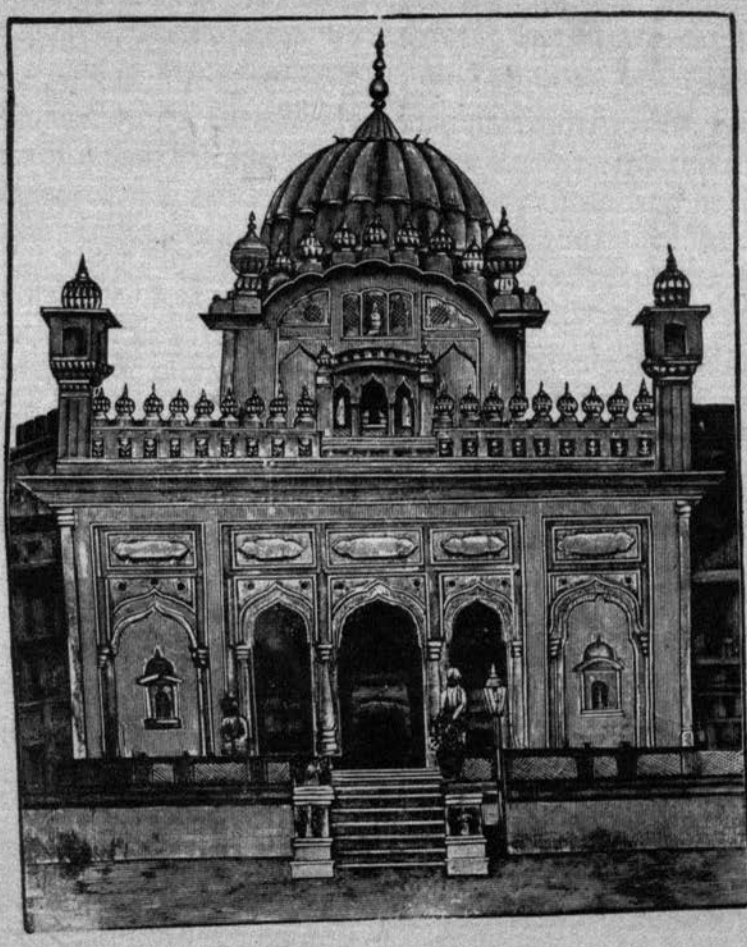
गत फ़रवरी की सरस्वती में डाक्टर ग्रियर्सन की संक्षिप्त जीवनी प्रकाशित हुई है। उसके तीसरे पैराग्राफ़ में लिखा गया है कि "उनका जन्म तारीख़ ७वीं जनवरी सन् १८५७ को हुआ, अर्थात् इस समय आपकी उमर ४८ वर्ष की है।" यह भूल है। डाक्टर साहब का जन्म १८५१ ई० का है और इस समय आपकी उमर ५४ वर्ष की है।

***

बीमारों के लिए एक नई तरह की घड़ी बनाई गई है। म्यूनिच के एक अध्यापक ने उसे बनाया है। उसके "डायल" के पीछे बिजुली का एक लैम्प लगा रहता है। उसका लगाव, एक तारके द्वारा, बीमार की चारपाई से रहता है। चारपाई वाले तार के छोर में एक बटन लगा दिया जाता है। जब बीमार वक्त देखना चाहता है तब वह उस बटन को दबाता है। दबाते ही घड़ी की छाया ऊपर छत पर पड़ती है। छाया में घण्टे और मिनट के काँटे और निशान, बढ़े हुए आकार में देख पड़ते हैं। अर्थात् यदि एक इञ्च लम्बा काँटा है तो वह उससे कई गुना बड़ा देख पड़ता है। इस घड़ी को रखने से, बिना गरदन टेढ़ा किये, अर्थात् इधर उधर मोड़े, बीमार आदमी अपनी चारपाई पर चित लेटे लेटे वक्त मालूम कर सकता है।

***

लण्डन में चिड़ियों को गाना सिखलाने के लिए एक आदमी ने एक स्कूल खोला है। २ रुपये देने से वह एक चिड़िया को तीन गीत सिखला देता है। इस स्कूल में तीन कमरे हैं। हर कमरे में एक एक फ़ोनोग्राफ़ (गानेवाला) यन्त्र रक्खा है। जो चिड़ियाँ सीखने के लिए आती हैं वे इन्हीं कमरों



शेरगढ़ी का स्मारक मन्दिर।

में, बारी बारी से, रक्खी जाती हैं। एक चिड़िया पन्द्रह बीस रोज़ में तीनों गीत याद कर लेती है। जब से यह स्कूल खुला है तब से सिर्फ़ एक चिड़िया ऐसी कुन्द-ज़ेहन निकली है जिसको ये गीत याद नहीं हुए। और सबों ने उन्हें अच्छी तरह याद कर लिया। हिन्दुस्तान में आदमियों ही के लिए काफ़ी स्कूल नहीं; और जहां हैं भी वहां लोग पढ़ते नहीं। पर इङ्गलैण्डवाले चिड़ियों को पढ़ाने लगे हैं। कोई समय शायद ऐसा भी आवै जब वहां चिड़ियां भी वक्तृता देने लगें!

***

फ़्रांस के विज्ञान-विशारद अध्यापक पोटर स्टीन्स ने एक अद्भुत यन्त्र निकाला है। उसके द्वारा वे अन्धों को आँखें देते हैं—अर्थात् उसकी सहायता से वे अन्धों में देखने की शक्ति फिर पैदा कर देते हैं। यहां तक कि जो जन्मान्ध हैं—जिन्होंने संसार की एक भी वस्तु नहीं देखी—उनको भी वे दृष्टिदान दे सकते हैं। स्टीन्स ने अपने इस अद्भुत यन्त्र की जाँच, डाकृर केज़ की आँखों पर पट्टी बांध कर, कुछ दिन हुए, की और उसमें उनको पूरी सफलता हुई। डाकृर साहब ने बन्द आँखों से कमरे की सब चीज़ों को देख लिया। अध्यापक स्टीन्स का मत है कि आदमी आँखों से नहीं देखता; किन्तु मग़ज़ (मस्तिष्क अर्थात् मस्तक से देखता है। आदमी के मस्तक में, जहां सब शक्तियों के ज्ञान का ख़ज़ाना है, एक विशेष शक्ति है। वही देखनेवाले को सब चीज़ों के रूप, रङ्ग और आकार आदि का ज्ञान कराती है। देखी गई चीज़ों का सिर्फ़ अक्स आँख पर पड़ता है। आँख सिर्फ़ चीज़ों का अक्स (प्रतिबिम्ब) डालने के लिए है। आँख से मस्तक तक एक ज्ञान-तन्तु लगा है; वह तार का काम देता है। अक्स को वही मस्तक तक पहुंचाता है। उसके वहां पहुंचते ही, देखनेवाले को देखी हुई चीज़ का ज्ञान हो जाता है। यदि चीज़ों का अक्स बिना आँख और उस तन्तु-विशेष की सहायता के मस्तक तक, किसी तरह, पहुँच जाय तो मनुष्य को बिना आँख के भी सब पदार्थ देख पड़ने लगें। इसी भित्ति पर—इसी आधार पर—अध्यापक स्टीन्स ने अपना यन्त्र बनाया है। जिस तरह टेलिफोन के द्वारा आवाज़ कान तक जाती है उसी तरह इस यन्त्र के द्वारा प्रकाश मस्तक तक पहुँचता है। इसकी परीक्षा अनेक विद्वानों ने की और सब स्टीन्स साहब की कामयाबी पर आश्चर्य—चकित हुए। विज्ञान चाहै जो करै। वह अन्धों को आँखें भी देने लगा। सम्भव है, किसी समय, वह मुर्दों को ज़िन्दगी भी देने की दया करै।

***

बन्दरों की बोली सीखने की कोशिश बहुत दिनों से हो रही है। अमेरिका के अध्यापक गार्नर जी जान से इसके पीछे पड़े हुए हैं। इस तरह की कोशिश करनेवालों में उनका नम्बर सबसे ऊंचा है। बहुत दिनों तक आप आफ़रीक़ा के जङ्गलों में बन्दरों के बीच रहे हैं। पर अभी तक बन्दरों के साथ बातचीत करने में आपको कामयाबी नहीं हुई है। अब आप दुबारा आफ़रीक़ा जाने को तैयार हैं। इस दफ़ा आप आफ़रीक़ा के पश्चिमी किनारे पर गेबून और केप लोपेज़ में अपना ख़ेमा रक्खेंगे। जो यन्त्र इस दफ़ा आप अपने साथ ले जायँगे वे बहुत क़ीमती और बहुत बड़े काम के हैं। उनमें से एक बहुत बड़ा फ़ोनोग्राफ़ भी है। यन्त्र बनाने में दुनिया में सब से अधिक नामवरी हासिल करने वाले एडिसन साहब ने इस फ़ोनोग्राफ़ को ख़ुद अपनी आँख के सामने बनवाया है। इसीमें बन्दरों की बोलियां भरी जायंगी। २७ मन वज़नी लोहे का एक पिञ्जड़ा भी गार्नर साहब अपने साथ ले जायंगे। उसीके भीतर बन्द हो कर, जङ्गल में, बन्दरों के बीच, आप बैठेंगे और उनकी बातचीत और स्वभाव आदि की जानकारी हासिल करेंगे। साहब को पूरी उम्मैद है कि इस दफ़ा की जाँच में उन्हें ख़ूब कामयाबी होगी। एवमस्तु।

***

संस्कृत को सामयिक पुस्तकों में अभी तक संस्कृतचन्द्रिका ही नाम लेने योग्य थी। अब एक और हुई है। इसका नाम मित्रगोष्ठी-पत्रिका है। यह एक वर्ष से काशी से निकलती है। काशी में मित्रगोष्ठी नामक एक समाज है। वङ्गवासि-विद्वानों के उद्योग से उसका जन्म हुआ है। इसी मित्रगोष्ठी की यह पत्रिका है। इसमें अच्छे अच्छे लेख रहते हैं। इसीसे इसके प्रचार में सफलता भी हुई है। संस्कृत का इससे बहुत कुछ उपकार हो सकता है। अतएव संस्कृत भाषानुरागी-मात्र के आश्रय की यह पात्र है। यदि इसकी भाषा कुछ अधिक सरल हो जाय और इसमें क्लिष्ट विषय कम रहा करें तो और भी अच्छा हो। इस पत्रिका की चैत्र की संख्या में यह श्लोक है—

बाला तन्वी मृदुतनुरियं त्यज्यतामत्र शङ्का
दृष्टा काचिद् भ्रमरभरतो मञ्जरी भिद्यमाना।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीड़नीया
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः समग्रम्॥

इसके विषय में लिखा गया है कि यह "विकट नितम्बा" नाम से प्रसिद्ध किसी स्त्री-कवि का है। परन्तु यह पद्य भानुदत्त मिश्र की रसमञ्जरी नामक पुस्तक में मिलता है। ऐसी पुस्तकों में उदाहरण के लिए जो पद्य दिये जाते हैं वे अक्सर और और पुस्तकों से ले लिये जाते हैं। पर भानुदत्त ने अपनी पुस्तक में जितने पद्य दिये हैं सब अपने ही बनाये दिये हैं। लिखा तो उन्होंने यही है। रसमञ्जरी के अन्त में आप कहते हैं—

तातो यस्य जनेश्वरः कविकुलालङ्कारचूड़ामणि—
र्देशो यस्य विदेहभूः सुरसरित्स्यन्देन सम्वेष्टिता।
पद्येनात्मकृतेन तेन कविना श्रीभानुना बोधिता
वाग्देवीश्रुतिपारिजातकुसुमस्पर्द्धाकरी मञ्जरी॥

इसमें "आत्मकृतेन पद्येन" इस बात को दृढ़ करता है कि रसमञ्जरी में जितने पद्य हैं सब भानुदत्त के ही हैं। अतः पूर्वोक्त पद्य "विकट-नितम्बा" का होने में सन्देह है।

* * *

मित्रगोष्ठी-पत्रिका में "साहित्यरत्नावली" छपा करती है। इस अवली में प्राचीन संस्कृत कवियों का ज़िकर रहता है और उनकी कविता के उदाहरण भी रहते हैं। पर यह ज़िकर बहुत ही थोड़ा रहता है और कविता के उदाहरण भी सिर्फ़ एक ही आध स्थल के दिये जाते हैं। पत्रिका के पढ़नेवालों को इससे सन्तोष नहीं हो सकता। पत्रिका को अकसर वही लोग लेते होंगे जिनको संस्कृत से कुछ अनुराग है। ऐसे पाठक संस्कृत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों के नाम आदि से स्वयं ही परिचित रहते हैं। इससे उनके लिए इस रत्नावली में कुछ विशेषता होनी चाहिए। यह लिख देना कि अमुक कवि को हुए लगभग इतने वर्ष हुए (या उसका समय बिलकुल ही ज्ञात नहीं); उसके इतने ग्रन्थ प्रचलित हैं; उनमें से अमुक ग्रन्थ के अमुक स्थल का एक नमूना यह है—विशेषता से बिलकुल ही ख़ाली है। इस तरह के उल्लेख से बहुत कम आनन्द मिल सकता है। क्षेमेन्द्र बहुत बड़ा कवि हो गया है। उसने न मालूम कितने ग्रन्थ लिखे हैं। एक पृष्ठ में उसके ग्रन्थ आदि का नाम लिखकर, चार पृष्ठ में उसके "दशावतारचरित काव्य" से रावणयात्रासम्बन्धी लगातार ५६ श्लोक, उसकी कविता के उदाहरण में, लिखदेने की गिनती साहित्यरत्नावली में पिरोने लायक़ रत्नों में नहीं हो सकती। यदि और कुछ न लिखिए तो इतना तो लिखिए कि इस कवि के जो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं उनमें किस किस चीज़ का वर्णन है और वह कैसा है। क्षेमेन्द्र के ग्रन्थों में बोधिसत्वावदानकल्पलता बहुत आदरणीय ग्रन्थ है। पर मित्रगोष्ठी पत्रिका की नवीं संख्या में उसका नाम देने के सिवा उसके विषय में एक अक्षर तक नहीं है। जिसने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं ऐसे कवि के किसी एक ग्रन्थ के किसी एक स्थल की कविता का अवतरण दे देने से उसकी योग्यता का बहुत ही कम अनुमान लोगों को हो सकता है। आशा है इन बातों का विचार इस पत्रिका के विद्वान् सम्पादक करेंगे। हमारी

अल्पबुद्धि में तो यह आता है कि जिन कवियों के विषय में अधिक बातें मालूम हैं उन्हीं पर प्रबन्ध लिखना और प्रत्येक प्रबन्ध को कुछ अधिक विस्तृत करना अच्छा होगा। यदि कई अङ्कों तक किसी प्रबन्ध को अपूर्ण स्थिति में रखना उचित न जान पड़े तो प्रत्येक अङ्क में प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों के एक ही दो ग्रन्थों को, या एकही दो विशेष बातों को, विवेचना हो सकती है।

***

ऊपर एक जगह "स्त्री-कवि" शब्द का प्रयोग आया है। इसे लिखते समय हमें एक और शब्द याद आ गया। वह शब्द "कविया" है। मुंशी देवीप्रसाद साहब ने महिलामृदुवाणी नाम की एक पुस्तक लिखी है। जिन स्त्रियों ने हिन्दी में पद्य रचना की है उन "काव्यकुशला कवियाकान्ताओं की काव्यरचना और जीवन-चरित्रों का" इसमें वर्णन है। यह "मृदुवाणी" बनारस से निकलनेवाली ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुई है। इस बात को तो कवि ही जान सकेंगे कि इस पुस्तक को वाणी कहां तक मृदु है। पर हां राजपूताने को प्रान्तिक वाणी के पद्य जहां जहां पर हैं वहां वहां पर और प्रान्तवालों के सिर पर फटे बांस का सा प्रहार होने का डर है। 'कवियाकान्ता" इस सामासिक शब्द पर हम कुछ नहीं कहते, पर कवि शब्द का स्त्री-लिङ्ग कविया विलक्षणता से ख़ाली नहीं है। इस नियम के अनुसार पति का स्त्री-लिङ्ग पतिया; यति का यतिया; अहि का अहिया और मुनि का मुनिया हुआ! इस पुस्तक के आरम्भ में एक छोटी सी भूमिका भी है। अफ़सोस है उसकी भाषा पर भी किसी ने विचार नहीं किया। उसमें एक जगह लिखा है—"हमने जो भाषाकवियों का इतिहास लिखने के लिये प्राचीन ग्रन्थों और कविवृत्तान्तों की खोज को थी तो उस प्रसंग में कुछ कविता ऐसी भी मिली जो काव्यकुशला कमलाओं के कोमल मुखारबिंदों की निकली हुई थीं।" शिव शिव!

प्रसिद्ध मूर्तिकार म्हातरे।

सरस्वती में इस देश के चतुर चित्रकार राजा रविवर्म्मा का जीवनचरित भी प्रकाशित हो चुका है और उनके कई मनोमुग्धकारी चित्रों का प्रतिबिम्ब भी वाचकों को भेंट किया जा चुका है। जिस प्रकार रविवर्म्मा ने चित्रविद्या में नाम पैदा किया है उसी प्रकार मूर्तिकार म्हातरे ने मूर्तिरचना में प्रसिद्धि पाई है। मिट्टी और पत्थर को मूर्तियां बनाने में आपका कौशल देखकर बड़े बड़े विज्ञानी आश्चर्य्य चकित होते हैं; विलायत तक के मूर्तिकार उनके सामने हार मानते हैं; गवर्नर और गवर्नरजनरल तक उनपर प्रशंसापत्रों की वृष्टि करते हैं। इस अल्पवयस्क, परन्तु महा-कुशल, मूर्तिकर्ता का हम संक्षिप्त जीवनचरित सरस्वती के पढ़नेवालों को सुनाते हैं।

श्रीयुक्त म्हातरे का पूरा नाम गणपतिराव काशिनाथ म्हातरे है। ये दक्षिण के रहनेवाले हैं। गणपतिराव इनका नाम है, काशिनाथ इनके पिता का, और म्हातरे इनके कुल का। ये सोमवंशीय क्षत्रिय हैं। इनका जन्म १८७५ ई० में हुआ। इनके पिता काशिनाथ केशव म्हातरे पूना में कमसरियट मोहकमे में कर्म्मचारी थे। गणपतिराव ने वहीं अपनी मातृभाषा मराठी सीखी। ये अपने माता पिता के चौथे लड़के हैं। उस समय इनका एक भाई पूना की वैज्ञानिक पाठशाला (College of Science) में पढ़ता था। वह घर पर कभी कभी अभ्यास के लिए चित्र खींचा करता था। उसे चित्र खींचते देख बालक गणपतिराव का चित्त उस ओर आकर्षित हुआ। लड़कपन ही से चित्र खींचने का उनको शौक़ पैदा हुआ। कुछ दिनों में उन्होंने नियमानुसार चित्रविद्या सीखकर चित्रकार होने का निश्चय किया। यथासमय उनके पिता ने पेन्शन ली और बम्बई में आकर वे रहने

लगे। गनपतिराव भी पिता के साथ बम्बई आये। किताबी विद्या सीखने में उनका चित्त न लगा। इसलिए उन्होंने बम्बई प्रान्त के पाँचवें क्लास तक पहुंच कर अङ्गरेज़ी पढ़ना छोड़ दिया। यह क्लास इस तरफ़ के पुराने मिडिल क्लास के बराबर है। पढ़ना छोड़कर १६ वर्ष की उमर, अर्थात् १८९१, में गणपतिराव ने बम्बई के सर जमशेदजी जीजी-भाई की शिल्पकला-पाठशाला (School of Arts) में प्रवेश किया। वहां, थोड़े ही दिनों में, उन्होंने चित्र खींचने, रङ्ग का काम करने, नमूने आदि बनाने में बहुत कुछ विज्ञता प्राप्त करली। जितनी परीक्षायें वहां होती हैं वे सब उन्होंने बड़ी नामवरी के साथ पास कीं। सब परीक्षाओं में उनका स्थान ऊँचा रहा; अनेक प्रशंसापत्र, अनेक उपहार, और अनेक पदक उनको मिले। इस समय उनके पास इतने प्रशंसापत्र (certificates) हैं, कि छापने पर, उनकी कोई ५० पन्ने की एक किताब हो गई है! गणपतिराव के बड़े भाई द्वारकानाथ ने भी इसी कला-भवन में शिक्षा पाई। चित्र बनाने और रंग का काम करने में उन्होंने भी वहां ख़ूब नाम पाया। उनको भी बहुत से प्रशंसा-पत्र और पदक मिले। अब वे एक प्रसिद्ध चित्र-कार हैं।

कला-भवन छोड़ने पर गणपतिराव ने मूर्ति बनाने की विद्या में विशेष प्रावीण्य प्राप्त करने का सङ्कल्प किया। इस विषय में म्हातरे महाशय को कला-भवन से बहुत ही कम सहायता मिली। कला-भवन के अध्यक्ष ग्रिफ़िथ साहब से उन्होंने कोई छ महीने तक ही शिक्षा पाई। मूर्ति बनाने की विद्या में जो कुछ उन्होंने सीखा सब अपने ही प्रयत्न से और अपने ही घर पर सीखा। अतएव इस विद्या में जो कामयाबी उनको हुई है वह और भी आश्चर्यजनक और तारीफ़ के लायक़ है। उन्होंने सारे संसार को इस बात का पक्का सबूत दे दिया कि वे स्वयंसिद्ध मूर्तिकार हैं; मूर्तिविद्या उनकी स्वाभाविक सम्पत्ति है; उसे उन्होंने किसीसे सीखा नहीं। मूर्ति बनाने में उनकी कुशलता से प्रसन्न होकर १८९५ ईसवी में बम्बई की "आर्ट सोसायटी" नामक समाज ने उनको एक पदक दिया। १८९६ में उनको दो पदक मिले—मूर्तिविद्या के लिए उन्होंने "विक्टोरिया पदक" (Victoria Medal) पाया और चित्रविद्या के लिए "मेओ पदक" (Mayo Medal)। १८९५ से म्हातरे महाशय, बम्बई की आर्ट सोसायटी की प्रदर्शनी में, अपने बनाये हुए रङ्गीन चित्र और मूर्तियों के नमूने बराबर दिखलाते आये हैं, और अपनी कारी-गरी के उपलक्ष्य में अनेक प्रशंसापत्र और उपहार उन्होंने पाये हैं।

परन्तु इस स्वयंसिद्ध मूर्तिकार की कारीगरी का अप्रतिम नमूना १८९६ में लोगों के दृग्गोचर हुआ। इस समय म्हातरे की उमर कुल २१ वर्ष की थी! यह नमूना एक स्त्री की मूर्ति है। उसका अङ्गरेज़ी नाम "To the Temple" है। हिन्दी में उसे "मन्दिराभिमुखी" कह सकते हैं। यह मूर्ति प्लास्टर आफ़ पेरिस (Plaster of Paris) नामक एक प्रकार के चूने की बनी है। एक रूप-वती तरुणी स्त्री पूजा की सामग्री हाथ में लेकर मन्दिर को पूजा करने जा रही है। ऐसे समय में जो भाव भावुक स्त्रियों के हृदय में उदित होते हैं वे इस मूर्ति की मुखचर्य्या और चाल ढाल से स्पष्ट देख पड़ते हैं। उसकी सुकुमारता, आनन्दित मुद्रा, साड़ी पहनने का तर्ज़, एक पैर का उठाना और सारे शरीरावयवों का यथास्थितपना देखकर स्वदेशी कारीगर ही नहीं विदेशी कारीगर तक दङ्ग हो गये। इसका आकार एक सजीव स्त्री के आकार के बराबर है। यह बम्बई के स्कूल आफ़ आर्टस् में रक्खी है। इसके फ़ोटो स्कूल के अध्यक्षों ने बड़े बड़े अधिकारियों के पास, यहां और विला-यत दोनों जगह, भेजे। जिसने उन्हें देखा सब तन्मय हो गये। प्रत्यक्ष मूर्ति की सुन्दरता फ़ोटो में नहीं आ सकती; परन्तु फ़ोटो ही को देखकर लोग म्हातरे महाशय के शिल्प-कौशल का गुणगान

करने लगे। वाइसराय और बम्बई के गवर्नर ने इस मूर्ति का फ़ोटो बड़े प्रेम और बड़े आदर से स्वीकार किया, और मूर्तिकार को बहुत प्रशंसा की। विलायत में सर जार्ज बर्डउड भारतवर्ष को कारीगरी का सबसे अच्छा ज्ञान रखते हैं। वे इस विषय के प्रमाण माने जाते हैं। "मन्दिराभिमुखी" की प्रतिमा के चित्र को देखकर वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उसे अप्रतिम ठहराया। उन्होंने कहा कि इस मूर्ति में भारतवर्ष की स्त्रियों की पवित्रता और उन के गार्हस्थ्य जीवन की मनोहर छाया उनको प्रत्यक्ष देख पड़ी। इस प्रतिमा ने सबका चित्त आकृष्ट कर लिया; सबका हृदय हर लिया। स्कूल आफ़ आर्ट्स् के प्रधान अध्यापक ने म्हातरे महाशय को स्वाभाविक प्रतिभावान् बतलाया। "टाइम्स आफ़ इण्डिया" ने भी उनकी ख़ूब तारीफ़ की। उन पर सब ओर से प्रशंसा-पुष्पों को वर्षा होने लगी। शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने गवर्नमेण्ट को रिपोर्ट की कि यह मूर्ति शिल्प-चातुर्य्य की पराकाष्ठा की व्यञ्जक है। महाराजा गायकवार की इच्छा को पूर्ण करने के लिए इस प्रतिमा को, गणपतिराव, बड़े प्रयत्न से बरौदा ले गये। उनको वहां बहुत कुछ मिलने की आशा थी। परन्तु "भाग्यं फलति सर्वदा"। कुल २०० रुपये उनको इस प्रतिमा के दर्शन की दक्षिणा गायकवार से मिली। गणपतिराव की इच्छा योरप जाकर मूर्ति बनाने की विद्या सीखने की बहुत थी। उनको आशा थी कि पाश्चात्य-शिक्षण-प्राप्त, शिल्पकर्म्म की योग्यता और आवश्यकता को समझनेवाले महाराज, उस विषय में, उनकी सहायता करेंगे। परन्तु उन्हें बरौदा से निराश लौटना पड़ा। ऐसी अद्वितीय मूर्ति को लेकर किसी राजा महाराजा ने म्हातरे महाशय के उत्साह को नहीं बढ़ाया। इसलिए लाचार हो कर उन्होंने, नाममात्र के लिए १२००) मूल्य लेकर, उसे स्कूल आफ़ आर्ट्स् को दे दिया। अब यह मूर्ति इस स्कूल के अ़जायबघर में, और अनेकानेक प्रसिद्ध और प्रशंसित मूर्तियों के बीच, विराजमान है। वहां पर वह अपनी निराली छवि से दर्शकों के मन को मोहित करती है। इसका चित्र पाठकों को, इस संख्या के साथ, भेंट किया जाता है।

शिल्पिशिरोमणि म्हातरे का दूसरा अद्भुत काम सरस्वती की प्रतिमा है। इस मूर्ति को भी उन्होंने प्लास्टर आफ़ पेरिस की बनाया है। सरस्वती मयूर पर स्थित है और सितार बजा रही है। इसे सुन्दरता का आगार कहना चाहिए; अथवा मूर्तिमती सुन्दरता ही कहना चाहिए। इस मूर्ति का तर्ज़ "मन्दिराभिमुखी" से भी अच्छा है। यह बहुत ही सरस बनी है। सरस्वती का मुकुट, उस की सौम्य-मुद्रा, उसके मुख और शरीर की सुघरता और मयूर की आकृति अतिशय मनोरम है। इस मूर्ति ने म्हातरे महाशय की कीर्ति को और भी दूर दूर तक फैला दिया। उन्होंने इसे १९०० वाली पेरिस की प्रसिद्ध प्रदर्शनी में भेजा। वहां से उनको एक पदक आया और एक सुविशेष सम्मान-सूचक प्रशंसापत्र (Honorable Mention Diploma) भी प्राप्त हुआ। खेद की बात है कि यह मूर्ति पेरिस से लौटते समय रास्ते में टूट गई। इसे बन्द करने में बड़ी बेपरवाही हुई जान पड़ती है। यह एक अद्भुत मूर्ति थी और योरप और अमेरिका के वर्तमान मूर्तिकारों की मूर्तियों से सुघरता में, सब प्रकार, विशेष थी, कम नहीं। इसका भग्नांश म्हातरे महोदय के कारख़ाने में अभी तक रक्खा है। टूटने के पहले इस सरस्वती-मूर्ति का जो फोटो लिया गया था उसकी नक़ल यहां दी जाती है।

म्हातरे महोदय का तीसरा काम पार्वती की प्रतिमा है। यह भी प्लास्टर आफ़ पेरिस की है। यह मूर्ति शबरी (भिल्ल-भार्य्या) के भेष में है। अर्जुन को घोर तपश्चर्य्या करते देखकर सब देवता डर गये। तब वे महादेव के पास गये, और विनय किया, कि युक्ति से आप अर्जुन को इस तपस्या से निवारण कीजिए। इसपर, भिल्ल का भेष बनाकर शङ्कर, अर्जुन के पास गये। अपने भेष के अनुकूल



मन्दिराभिमुखी



* शबरी *

सरस्वती





गणपति काशीराम म्हातरे।

पार्वती को भी शबरी बनाकर वे साथ ले गये। यह कथा महाभारत में है। इसी कथा का अवलम्बन करके मूर्तिकार म्हातरे ने पार्वती की प्रतिमा शबरी के रूप में बनाई है। इसकी सुन्दरता, वेश विन्यास, भावभङ्गी और वस्त्राभूषणों को देखकर देखनेवाले का चित्त मोहित हो जाता है। शिल्प-कार्य्य में जो लोग कुशल हैं उनका मत है कि यह मूर्ति ऊपर वर्णन की गई दोनों मूर्तियों से बढ़कर है। यह पूरे आकार की है और इसे देखकर इस के सजीव होने का भ्रम होता है। देहली दरबार के समय, १९०३ की जनवरी में, लार्ड कर्ज़न ने जो प्रदर्शनी खोली थी, उसमें यह प्रतिमा दिखलाई गई थी। इसके लिए म्हातरे महाशय को पहले दरजे का इनाम मिला, और सोने का एक पदक भी उन्हें दिया गया। यह मूर्ति मूर्तिकार के कारख़ाने में रक्खी है और उसकी शोभा को बढ़ा रही है। इसके सौन्दर्य्य का कुछ कुछ अनुमान इसके चित्र से पाठकों को हो सकेगा। यह चित्र भी उनकी भेंट है। "कुछ कुछ अनुमान" हम इस लिए कहते हैं, क्योंकि असल का भाव नक़ल में कदापि पूरा पूरा नहीं आ सकता।

गणपतिराव म्हातरे ने इस उमर में और भी अनेक शिल्पकार्य किये हैं। उनमें से दो चार का उल्लेख हम नीचे करते हैं—

(१) कराची में एक धनवान सौदागर हैं। उनका नाम है एच० जे० रुस्तमजी। उनका बस्ट (अर्द्धाकृति प्रतिमा)। यह सङ्गमरमर का है। इस से रुस्तमजी इतने प्रसन्न हुए कि बस्ट की क़ीमत के सिवा आपने इनाम के तौर पर भी बहुत कुछ दिया।

(२) परलोकवासी वरजीवनदास माधवदास का सङ्गमरमर का बस्ट।

(३) "स्नानोत्तर" (After Bath) नाम की प्रतिमा। यह प्लास्टर आफ़ पेरिस की है। इसके लिए म्हातरे महाशय को भावनगर का रजतपदक मिला और साथ ही उन्होंने इनाम भी पाया।

(४) श्रीयुक्त यन० जी० वाड़िया के दो सङ्गमरमर के बस्ट।

(५) पारसियों के अस्पताल में रखने के लिए डाकृर टी० बी० नारिमन का बस्ट। रायबहादुर यम० सी० मर्ज़बान इसे देखकर इतना प्रसन्न हुए कि इसकी क़ीमत के सिवा एक बहुमूल्य उपहार भी आपने दिया।

(६) पारसी लोगों के प्रधान देव ज़ोरैस्टर का बस्ट। सङ्गमरमर का।

(७) परलोकवासी रावसाहब विश्वनाथ नारायण माण्डलिक का प्लास्टर आफ़ पेरिस का बस्ट। इन रावसाहब की मूर्ति स्थापन करने के लिए बम्बई में एक कमिटी है। कमिटी ने मूर्ति बनाने का काम विलायत के एक प्रसिद्ध शिल्पकार को दिया। मूर्ति बनाने के पहले शिल्पकार ने मिट्टी का एक नमूना भेजा। वह नमूना माण्डलिक के फ़ोटो से बिलकुल न मिला। इस पर कमिटी ने स्कूल आफ़ आर्टस् के प्रधान अध्यक्ष को नमूना बनाने का काम दिया। नमूना बना। परन्तु वह भी पसन्द न आया। तब लोगों को म्हातरे की याद आई। म्हातरे महाशय ने ऐसा अच्छा नमूना बनाया कि माण्डलिक के फ़ोटो से वह बिलकुल मिल गया। जब कमिटी ने उसे पसन्द कर लिया तब म्हातरे उसीके अनुसार सङ्गमरमर की मूर्ति बना देने के लिए प्रस्तुत हुए। परन्तु बड़े आश्चर्य्य की बात है कि कमिटी ने यह काम उन्हें न देकर उनके नमूने को उसी, पूर्वकथित, शिल्पकार के पास मूर्ति बनाने के लिए विलायत भेजा! देशी कला-कौशल की उसने ख़ूब क़दर की! विलायत के कारीगर को बनाने का ठेका देकर उसे तोड़ने का साहस शायद कमिटी को नहीं हुआ। यदि कमिटी यह लिखती कि तुम्हारा नमूना ठीक नहीं, इसलिए पसन्द नहीं आया, तो विलायती शिल्पकार महात्मा इस बात को शायद क़बूल भी न करते।

धीरे धीरे लोग म्हातरे महाशय की क़दर करने लगे हैं। यह सौभाग्य की बात है। इस समय उनके कारख़ाने में कई काम हो रहे हैं। यथा–

(१) श्रीरघुनाथ नामक एक महात्मा की मूर्ति, सङ्गमरमर की, बैठी हुई स्थिति में।

(२) कोल्हापुर के दरबार के लिए महारानी विक्टोरिया का बस्ट, सङ्गमरमर का।

(३) अहमदाबाद की विक्टोरिया मेमोरियल कमिटी के लिए, महारानी विक्टोरिया की प्रतिमा। यह पूरे आकार की मूर्ति होगी और बहुमूल्य सङ्गमरमर की बनैगी। मूर्ति के ऊपर जो छत्र रहैगा उसकी बनावट इस देश की सी होगा। मूर्ति के नीचे बैठक भी रहैगी।

ये काम शायद अब तक ख़तम भी हो गये होंगे।

म्हातरे महाशय की यह हार्दिक इच्छा है कि वर्ष दो वर्ष के लिए वे योरप की सैर करें; और वहां रोम, पेरिस और लण्डन के प्रसिद्ध प्रसिद्ध सङ्गतराश और मूर्तिकारों के काम को देखकर अधिक अनुभव प्राप्त करें। इसके लिए द्रव्य दरकार है। व्यर्थ के चन्दों में फूंकने के लिए इस देश के धनवानों के पास कुबेर की सम्पत्ति टूट पड़ती है; परन्तु ऐसे ऐसे उपयोगी कामों के लिए उनकी गाँठ से एक फूटी कौड़ी भी नहीं निकलती। यह बड़े अफ़सोस की बात है; बड़ी लज्जा की बात है। म्हातरे महाशय की सहायता से सहायक की, देश की, और देशवासियों की, सबकी, शोभा होगी। उनकी इस इच्छा के पूर्ण होने के अभी कोई लक्षण नहीं देख पड़ते। यथाशक्ति वे स्वयं ही इसका प्रबन्ध कर रहे हैं। परन्तु इतने विस्तृत देश में ऐसे अलौकिक मूर्तिकार की एक छोटी सी अभिलाषा को पूर्ण करनेवाले का न मिलना इस देश के लिए भारी कलङ्क का विषय है। जगदीश्वर इस शिल्पी को चिरञ्जीव रक्खे और अपनी शिल्प-कला से इस अधोगामी देश का सिर ऊँचा करने की उसे शक्ति दे!

ग्रीष्म।

[१]

हा हा! असह्य यह दुःख सहा न जाता;
प्राखर्य्य से बहुत ही सब को सताता।
आया प्रचण्ड यह, ज्ञात नहीं, कहां से,
क्या दण्ड है यह मिला विधिके यहां से?

[२]

क्या हैं हुए कुपित मन्मथ-भस्मकारी
भालस्थ आँख अपनी सहसा उघारी?
अग्न्यस्त्र सूर्य अथवा हम पै चलाते;
पाते पता न हम क्यों इतना जलाते?

[३]

क्या वाड़वानल नया विधि का बनाया
तेरे निदेश-अनुसार यहां, महेश,
दारिद्र्य-सागर-निवास-निमित्त आया?
तो क्यों बढ़ै न फिर आतप-जात क्लेश!

[४]

क्या देश-बाल-विधवा-तन-तीव्र-ताप-
ज्वाला कराल इस आतप के बहाने
न्यायी नितान्त जगदीश्वर की पठाई,
आई कठोर इस भारत को जलाने?

[५]

क्या देश-भक्ति-मय तेज हमैं, विधाता,
स्वस्थान से स्खलित हो गरमी दिखाता?
जैसे मनुष्य-जठराग्नि, ज्वरावतार
ले के, प्रसारित करै गरमी अपार।

[६]

क्या ग्रीष्म है भरत-भू-भ्रमणार्थ आया?
आः! तो उसे मृतक-मारण क्यों सुहाया!
जो आपही मृत उसे फिर मारना क्या?
आत्मज्ञ को दुख-सुखादि विचारना क्या?

[७]

है देव-देव, मम बुद्धि नहीं ठिकाने;
क्या क्या प्रलाप मुख से निकले, न जाने।
है वस्तुमात्र तव जो जग में दिखाती
बेकाम एक न कहीं पर दृष्टि आती।

[८]

जो दुःख हेतु हमको जग में दिखाते,
वे ही अनल्प सुख भी बहुधा दिलाते।
जो ग्रीष्म यों न सब को अति ही तपाता,
तो "मानसून" फिर क्यों कर मेह लाता?

सनातनशर्म्मा सकलानी।

पुनः करो उद्योग।

[अङ्गरेज़ी कविता "Try Again" का अनुवाद]

[१]

'T is a lesson you should heed,—
Try again.
If at first you don't succeed,
Try again.
Let your courage then appear,
For if you will persevere,
You will conquer, never fear,—
Try again.

❋

देखो बात याद यह कर लो,—
पुनः करो उद्योग।
यदि तुम सफल न पहले हो तो,
पुनः करो उद्योग।
साहस को दिखलाओ अपने,
क्योंकि सदा साहस ही से
जीत सकोगे, भीत न होना,
पुनः करो उद्योग।

[२]

Once or twice though you should fail,
Try again.
If you would at last prevail,
Try again.
If we strive 'tis no disgrace
Though we may not win the race.
What should you do in that case?
Try again.

❋

बार एक दो सफल न हो यदि
पुनः करो उद्योग।
विजय चाहते हो जो तो तुम
पुनः करो उद्योग।
कोशिश करने में क्या लज्जा?
यदि न सफलता आवै हाथ
तो क्या करना तुम्हें चाहिए?
पुनः करो उद्योग॥

[३]

If you find your task is hard,
Try again.
Time will bring you your rewrd,
Try again.
All that other folk can do,
Why with patience should not you?
Only keep this rule in view,—
Try again.

❋

काम कठिन जो जान पड़े तो
पुनः करो उद्योग।
समय सफलता देगा तुमको;
पुनः करो उद्योग।
जिसे सभी करते हैं उसको
धीरज धर तुम क्यों न करो?
इसी नियम को सदा याद रख,
पुनः करो उद्योग॥

गोविन्दशरण त्रिपाठी।

हंस-सन्देश।

निषध देश का राजा नल, एक बार, वनविहार के। निकला। नगर से कुछ दूर निकल जाने पर, एक उपवन में उसने एक मनोहर तालाब देखा। उसमें ख़ूब कमल खिल रहे थे। मछलियां खेल रही थीं; और अनेक प्रकार के जलपक्षी कलोल कर रहे थे। वहां पर उसने एक बहुत ही मनोरम हंस के। देखा। राजा के। वह इतना पसन्द आया कि उसने उसे सजीव पकड़ना चाहा। इस लिए उसने अपने निषङ्ग से एक सम्मोहन शर उस पर चलाने के लिए निकाला। शर के। उसने शरासन पर रक्खा ही था कि उसने एक अलक्षित वाणी सुनी। उस वाणी का मर्म्म यह था कि—"हे नरेश, इस पर बाण मत छोड़। यह तेरा अभीष्ट सिद्ध करेगा। तेरी ही रूप-गुण-सम्पदा के अनुरूप यह तुझे एक त्रिभुवन-मोहिनी राज्यकन्या प्राप्त करावेगा। उसे तू अपनी महिषी बनाना"। यह सुनकर उस आकर्णाकृष्ट बाण के। राजा ने धनुष से उतार लिया।

नल की इस दयालुता पर वह हंस बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपना स्थान छोड़कर नल के कुछ निकट आया और बोला—"हे निषधनाथ, ईश्वर तेरा कल्याण करै। तू ने मुझ पर दया दिखाई है। इसके बदले में मैं भी तेरी कुछ सेवा करना चाहता हूं। तू मुझे साधारण पक्षी मत समझ। मैं ब्रह्मा के रथ के। खींचता हूं; इन्द्र के सिंहासन के पास बैठता हूं; जयन्त इत्यादि देव-बालकों के साथ खेलता हूं; और मन्दाकिनी के किनारे विहार किया करता हूं। तू ने अपने नृपोचित गुणों से इस भूमण्डल के। स्वर्ग से भी अधिक सुषमाशाली कर रक्खा है। इसलिए कभी कभी मैं यहां भी घूमने आया करता हूं। मैं चाहता हूं कि जैसे और देवता मुझसे सख्य-भाव रखते हैं वैसे ही तू भी रख"। नल ने इस बात के। प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। आज से तू मेरे प्राणों से भी अधिक प्यारा हुआ, यह कहकर राजा ने बड़े ही प्रेम से उस पक्षी के शरीर पर अपना कर-कमल फेरा। कुछ देर तक वे दोनों परस्पर प्रेमालाप करते रहे। अनन्तर नल के लिए एक कन्यारत्न ढूंढ़ने के निमित्त, हंस ने, राजा की अनुमति पाकर वहां से प्रस्थान किया। राजा भी नगर की तरफ़ लैाटा, परन्तु शरीर मात्र से; मन से नहीं। मन उसका हंस ही के साथ उड़ गया था।

हंस के वियोग में नल के। बड़ा दुःख हुआ। दिन रात वह उसीका चिन्तन करने लगा। किसी काम में उसका दिल न लगने लगा। इसी समय वसन्त का आविर्भाव हुआ। इससे उसे और भी अधिक पीड़ा हुई। वसन्त विरहियों का वैरी है। अतएव दिल बहलाने के लिए, अपने उद्यान में, एक बावली के किनारे राजा जा बैठा। वहां वह सैकड़ों तरह की भावनायें कर रहा था कि सहसा वही उसका परिचित हंस वहां आता हुआ उसे देख पड़ा। राजा के। परमानन्द हुआ। उसे खोई हुई निधि सी मिली। नल ने उस दिव्य हंस के। अपने गोद में बिठाला। कुशल समाचार पूछने के अनन्तर राजा ने उसे अपने हाथ से मृणालाङ्कुर खिलाये। रास्ते की उसकी थकावट जाती रही। हंस से नल ने सुना कि स्वर्गलोक में जितने शहर, गांव और क़सबे हैं सबमें उसके यशोगीत गाये जाते हैं। गन्धर्वनारी, किन्नरी और सुराङ्गनाओं के। अब और किसी विषय के गीत अच्छे नहीं लगते। औरों के। लोग सुनते भी नहीं। इससे गायक और गायिकायें अक्सर यहां आती हैं; उसके नये नये चरित सुनती हैं; और, उन्हींके आधार पर श्लोक, ग़ज़ल और गीतों की वे रचना करती हैं।

मामूली बातें हो चुकने पर हंस ने मतलब की बात शुरू की, जिसे सुनने के लिए नल घबरा रहा था। उसने कहा मित्र, तेरे लिए एक अनन्य-साधारण कन्या ढूंढ़ते ढूंढ़ते मुझे बड़ी हैरानी उठानी पड़ी। ऊपर जितने लोक हैं सबकी ख़ाक मैंने छान डाली। पर एक भी सर्व्वोत्तमा रूपवती

मुझे न देख पड़ी। तब मैंने ठेठ अमरावती की राह ली। वहां पर भी एक एक घर मैंने ढूंढ़ डाला। तिस पर भी मेरा काम न हुआ। मेरे चेहरे पर उदासी छा गई। मैं डरा। मुझे यह विश्वास होने लगा कि मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग हो जायगी। मैं अपना प्रण न पालन कर सकूंगा। मुझे तेरे लायक़ कोई कामिनी न मिलैगी। जब अमरावती ही में नहीं, तब उसके होने की और कहां सम्भावना हो सकती है? इसी सोच विचार में मेरे मिनट, घण्टे और दिन जाने लगे। एक दिन मेरा जी बहुत ऊबा, इसलिए मैं देवराज की सभा में गया। मैंने कहा चलो वहीं चलकर कुछ देर जी बहलावें। वहां मैं-ने देखा कि सब देवता यथास्थान बैठे हैं। साहित्य-शास्त्री देवता, महाराजा अयोध्या के रसकुसुमाकर पर वाद विवाद कर रहे हैं। कोई इस नायिका में दोष निकाल रहा है, कोई उसमें। कोई कहता है रूप नहीं अच्छा; कोई कहता है भाव नहीं अच्छा। इसी तरह लोग अपनी अपनी हांक रहे हैं। इस खींचा तानी को देखकर सुरेन्द्र ने कामेश्वर शास्त्री की तरफ़ देखा। इन शास्त्री महाराज का जन्म सृष्टि के आदि का है। पर, इतने बूढ़े हो जाने पर भी नायिकाओं के गुणदोष की पहचान में आप अपना सानी नहीं रखते। यही समझकर सुरेन्द्र महाराज ने आज्ञा दी कि शास्त्रीजी, अब आप भी कुछ कहिए। आपकी राय में कौन रमणी सबसे अधिक रूपवती है।

कामेश्वर जी ने सुरेश्वर की आज्ञा सिर पर रक्खी। अपनी पगड़ी के ढीले पेंचों को उन्होंने कड़ा किया। फिर उन्होंने वक्तृता आरम्भ की। आप बोले—

अमरराज, इनमें से एक भी नायिका मुझे अच्छी नहीं जँचती। सब में कोई न कोई दोष है। मेरी गृहिणी को यह घमण्ड था कि मैं बहुत ही रूपवती हूं। इससे वह कभी कभी मुझे भी कुछ न समझती थी। एक बार उसका गर्वगर्भित व्यवहार मुझे दुःसह हो उठा। इस लिए मैंने उसके गर्व को दूर करना चाहा। मैं एक सर्वाङ्गसुन्दरी रमणी की खोज में निकला। इसमें मैं बहुत दिन तक हैरान रहा। आख़िर को मुझे कामयाबी हुई। विदर्भदेश के राजा भीम की कन्या दमयन्ती को देखकर मैं स्तम्भित हो गया। वैसी सुन्दरी मैंने कभी नहीं देखी थी। उसका चित्र मैं खींच लाया। उसे देख-कर मेरी घरवाली की अक़ल ठिकाने आ गई। तब से उसका गर्व दूर हो गया और वह मुझे वक्त पर रोटी देने लगी।

एक घण्टे तक, साहित्याचार्य्य कामेश्वर शास्त्री ने दमयन्ती के रूप का वर्णन किया। उस समय सुरेन्द्र सभा में अनेक सुन्दरियां बैठी हुई थीं। दमयन्ती का नखसिख वर्णन सुनकर उनकी अजीब हालत हुई। वे एक दूसरे का मुह ताकने लगीं। तिलोत्तमा का चेहरा काले तिल के समान काला पड़ गया। मदालसा का सौन्दर्य-मद उतर गया। सुलोचना ने अपने लोचन बन्द कर लिये। सुम-ध्यमा सखियों के मध्य में छिप गई। मेनका का मन मलीन हो गया। कलावती अपनी कलाओं को भूल गई। सुविभ्रमा का विभ्रम भ्रम में पड़ गया। शशिप्रभा निष्प्रभ हो गई। और चित्रलेखा चित्र के समान बैठी रह गई।

शास्त्री जी की बात सुनकर मैं बहुत ख़ुश हुआ। मैं वहां से फ़ौरन ही उड़ा। कोई दो घण्टे में मैं विदर्भपुरी में दाख़िल हुआ। वहां मैं दमयन्ती के प्राङ्गण में पहुंचा। उस जगह एक हौज़ था। उसमें एक फ़ौवारा था। उसकी चोटी पर मैं जा बैठा। कुछ देर में मुझे वहां दमयन्ती देख पड़ी। उसके रूप को देखकर मैं अचरज में आ गया। मित्र, इसके पहले मैंने वैसी सुन्दरी कहीं नहीं देखी थी। रूपवर्णन में शास्त्री जी की जड़ता का मुझे तब अन्दाज़ हुआ। कहां दमयन्ती का भुवनमोहन रूप और कहां शास्त्री जी का शुष्क वर्णन। दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर! आख़िर बूढ़े ही तो ठहरे।

मैंने देखा, दमयन्ती की दशा अच्छी नहीं। वह उदास है। इस लिए उसकी चिन्ता का कारण जानने की इच्छा से मैं वहीं ठहर गया। उस हैाज़ के पास दमयन्ती के कई क्रीड़ा-हंस भी थे। उन्हीं-के साथ मैं भी इधर उधर घूमने ग्रैार दमयन्ती की चर्य्या अवलोकन करने लगा। मैं बीच बीच में मनुष्य की बोली बोलने लगा। उसे सुनकर दमयन्ती को बड़ा कैातूहल हुआ। वह मेरी तरफ़ बार बार देखने लगी। मैं यही चाहता था। इतने में एक विघ्न हुआ। दमयन्ती को खेदवती देख, एक सखी, उससे खेद का कारण पूछने लगी। वह बोली—

सखी, लवलीलता के समान तेरी गण्डस्थली पीली पड़ गई है। लाल कमल के समान अपने कोमल करपल्लव के बोझ से उसे क्यों तू तङ्ग कर रही है? देख, यह निष्करुण पिक अधखिली कलियोंवाली आमकी इस पतली शाखा को पीड़ित कर रहा है। क्यों नहीं तू उसे अपनी करतालिका से उड़ा देती? सुगन्ध के लोलुप ये भ्रमर खिले हुए फूलों को छोड़ कर तेरी तरफ़ आते हैं; पर, व्याकुल हो कर, वे पीछे हट जाते हैं। इससे जान पड़ता है कि सन्ताप से तेरा श्वास तप रहा है। तेरे कान में खोंसे हुए तमाल-दल को खोंचने में जिसे तत्पर देख तुझे कुतूहल होता था वह हरिण-शावक तुझे खिन्नहृदय जान कर मुंह में रक्खे गये भी दर्भाङ्कुरों को नहीं खाता। करतल में रख-कर जिसे तू अनेक प्रकार की सरस बातें सिखलाती थी वह तेरा क्रीड़ाशुक, तुझे चुप देख, ऐसा मूक हो रहा है जैसे अभी नया जङ्गल से पकड़ आया हो। अपने इस केलिहंस को तो तू ज़रा देख। उसकी सहचरी आगे चलकर, बड़ी ही मधुर ग्रैार रसभरी वाणी से उसे पुकार रही है। परन्तु वह उसके पास नहीं जाता। वह चाहता है कि तू अपने पाणिपल्लव से मृणाल का एक टुकड़ा उसकी चोंच में रख दे। क्या बात है, क्या कारण है, कि यह अतर्कित आई हुई पियराई कनकचम्पक के समान तेरी गैार कान्ति को बिगाड़ रही है? एक तो तू स्वयं ही दुबली पतली थी; तिस पर यह अधिक दुबलापन क्यों? इस प्रकार सैकड़ों तरह की बातें दमयन्ती की सखी ने उससे पूछीं; परन्तु, उत्तर में, दमयन्ती के मुंह से एक भी शब्द न निकला। वह पूर्ववत् चुपचाप बैठी रही। हां, एक लम्बी उसास मात्र उसने ली। तब उसकी एक ग्रैार सखी बोली। दमयन्ती के मैानावलम्बन ग्रैार दुबलपेन का कारण वह समझ गई थी। उसने कहा—

इसका पिता इसे एक योग्य वर को देना चाहता है। इस लिए उसने, कुछ समय हुआ अनेक चतुर चित्रकारों को बुलाया। उनसे उसने हज़ारों रूप-गुणसम्पन्न राजकुमारों के चित्र तैयार कराये। एक दिन वे चित्रफलक मेरी नज़र में पड़ गये। मुझ पर मूर्खता सवार हुई। मैं उनको इसके पास उठा लाई। इसने बड़े ध्यान से उनमें से एक एक को देखा। देखते देखते एक त्रिलोकी-तिलक युवा पर यह मोहित हो गई। तभी से इसकी हालत ख़राब है। तभी से यह अथाह चिन्ता-सागर में गोते खा रही है।

इसके शरीर के भीतर जलने के भय से इसकी श्वास-वायु इससे दूर भग रही है। ग्रैार आंसुग्रों की धारा में डूब जाने के डर से नींद इसके नयनों के पास नहीं आती। उसीर का लेप लगाने से यह ग्रैार अधिक सन्तप्त हो उठती है। कमलिनीदलों के पंखे को देख कर इसे क्रोध आता है। जिसने इसके हृदय में प्रवेश किया उसी सुभग का यह सतत स्मरण करती रहती है। इसका सन्ताप मुझे तो, इस तरह, दुर्निवार मालूम होता है। खिड़की की राह से चन्द्रमा को देखने में इस चञ्चलाक्षी को पीड़ा होती है। इस लिए यह अपना मुंह नीचा कर लेती है। पर ऐसा करने से इसका मुंह इसके वक्षःस्थल में प्रतिबिम्बित हुआ देख पड़ता है। उसे देख चन्द्रमा के धोखे यह बेतरह कँप उठती है। एक तो स्वभाव ही से यह सुकुमार ग्रैार दुबली थी; फिर मनोज ने इसे ग्रैार भी दुर्बल कर दिया। यह देख कर इसके हाथ के कङ्कणों को यह सन्देह

हुआ कि अब यह हमारा बोझ न सह सकेगी। इसी लिए, देखो, वे ज़मीन पर जा गिरे हैं। "यह कुमुदनी इस पापिष्टा चाँदनी से अभी तक प्रीति रखती है। सखी, इसको किसी वस्तु से ढक दे; जिसमें इसे चन्द्रकिरणों का स्पर्श न हो। नहीं तो, कहीं, इसे भी मेरे समान ज्वर न आजाय"। इस तरह यह बार बार कहा करती है। न इसे सघन वृक्षों की छाया से शीतल उद्यान में आराम मिलता है; न चन्दनचर्चित और मणिमण्डित अट्टालिका में आराम मिलता है; और न चन्द्रमरीचियों से धौत महल के भीतर आराम मिलता है। इस प्रकार दमयन्ती की गुप्त चेष्टाओं का वर्णन करके उसकी सखियाँ उस समय के अनुकूल उपचार करने लगीं। उन्होंने कमलिनीदलों की एक कोमल शय्या प्रस्तुत करके उस पर उसे लिटाया। पर बेचारी दमयन्ती को उस महाशीतल शय्या पर वैसा ही सन्ताप हुआ जैसा कि मार्तण्ड की प्रचण्ड किरणों से उत्तप्त हुए गढ़े में पड़ी हुई मछली को होता है। उसे बहुत ही व्याकुल देख उसकी सब से प्यारी सखी ने ताज़ी मृणाल-लता को उसके कण्ठ पर रक्खा कि कुछ तो उसे ठंढक पहुंचे। परन्तु हुआ क्या? उसके ताप की प्रचण्डता से वह मृणाललता नीलम के समान काली हो गई!

इस प्रकार दुर्निवार ताप से तपी हुई उस बाला को देख मुझे दया आई। मैं धीरे धीरे उसके पास गया और अपने पंखों से उस पर हवा करने लगा। मुझे इस तरह अपनी सेवा करते देख उसने अपनी दृष्टि मेरी तरफ़ फेरी। तब, अवसर पाकर, मैं ने उससे कहा—

तरुणि, जिस तरुण का तू चिन्तन करती है वह धन्य है। उसके पुण्य की सीमा नहीं। जो युवा तुझसे प्रेमबन्धन करने की अभिलाषा रखते हैं उनको मैं त्रिभुवन में सबसे बड़ा भाग्यशाली समझता हूं। सुन्दरि, सुरेन्द्र के समान देवता भी तुझे पाने की कामना करते हैं। तब, यदि, मनुष्यों में, तेरा प्रार्थित तरुण तुझे न मिले तो बड़े आश्चर्य की बात है। तेरे स्मरण के कारण, मन्दार-मालाओं से अलङ्कृत मणि-मन्दिरों में इन्द्राणी के साथ बात चीत करना भी इन्द्र को अच्छा नहीं लगता। क्षीर-सागर के ठीक बीच में रह कर भी, और सैकड़ों नदियों के द्वारा चरणस्पर्श किये जाने पर भी, तेरे सोच में, वारिपति वरुण को ज्वर चढ़ रहा है। तेरे कारण पञ्चशर से पीड़ित किया गया कुबेर आँखें बन्द करके, चन्द्रमौलि के पास से हटकर उनकी सखियों के पास चला जाता है। चन्द्रचूड़ की चूड़ा के चन्द्रमा की किरणें उससे नहीं सही जातीं। तेरे त्रैलोक्यमोहक तनु को देखकर भगवान अरविन्दबन्धु (सूर्य) को रागान्ध रोग हो गया है। इसीसे पृथ्वी के चारों ओर वे दिन रात गतागत किया करते हैं। गिरिजा को गिरीश के वाम भाग में बैठी हुई देखकर यदि तुझे स्पर्धा उत्पन्न हुई हो तो साफ़ साफ़ मुझसे तू वैसा कह दे। मैं तुझे, बहुत जल्द, उनके दाहिने भाग में बिठला दूं। अधिक कहना सुनना मैं व्यर्थ समझता हूं। यदि तू कहे तो मैं तुझे लेकर, दूसरी लक्ष्मी के समान, नारायण के अङ्क में, अभी बिठला आऊं। मैंने तेरे सामने बहुत से देवताओं के नाम लिए। त्रिलोकी में जितनी विलासिनी हैं उनके लिए वे सभी दुर्लभ हैं। कृपा करके अब तू मुझे बतला कि उनमें से किसे तू अपने पाणिपीड़न से सबसे अधिक भाग्यवान बनाना चाहती है। मेरी ये मीठी मीठी बातें सुनकर तू मुझे कहीं पिंजड़े के शुक के समान, वृथा बकवादी मत समझना। मैं ब्रह्मा का वैमानिक हूं। मेरे लिए दुनिया में कोई वस्तु दुष्कर नहीं।

यह सुनकर उस मृगाक्षी को मेरी बातों पर विश्वास आ गया। और उसने उस फलक को, जिस पर तेरी तसवीर थी, बड़े प्रेम से अपनी छाती से लगाया। तुझ में, इस तरह, एकतान हुई उस बाला को देखकर मैंने अपना प्रयास सफल समझा। मैंने कहा—यह वीर युवक मधु है; तू माधवी है। यह कुमुदबन्धु है; तू कौमुदी है।

ऐसी अनुपमेय जोड़ी का सम्बन्ध चिरकाल तक सुखकारक हो ! इस तरह उसको विश्वास दिला कर तेरे पास आने की इच्छा से ज्योंही मैं उड़ने को हुआ त्योंही उसने, अपने कम्बु-कण्ठ से उतार कर, यह हार मेरे गले में डाल दिया। चन्द्रमा की चन्द्रिका से भी अधिक निर्मल, तेरी प्रिया की दूसरी हृदय-वृत्ति के समान, यह मुक्तालता तेरे हृदय को आनन्दित करे !

इस माला को नल ने बड़े आदर से लिया। उसको स्पर्श करते ही उसका शरीर कण्टकित हो आया। उसे उस समय यह भावना हुई कि एक छेद होने के कारण इसको मेरी प्रियतमा के अङ्ग का स्पर्श हुआ। पर पञ्चशायक के शायकों से किये गये सैकड़ों छेदों को हृदय में धारण करके भी मुझे अभी तक उसके दर्शन तक नहीं हुए ! मैं बड़ा ही अभागा हूं। कुछ देर तक वह ऐसी ही ऐसी चिन्ताओं में निमग्न रहा। जब वह उस चिन्तासमुद्र से उन्मज्जित हुआ तब, आनन्द से पुलकित होकर, अपने निर्व्याज मित्र, उस हंस को उसने हृदय से लगा लिया। कल्पवृक्ष मांगने से मांगी हुई चीज़ देता है और चिन्तामणि चिन्तन करने पर चिन्तित पदार्थ को पास पहुंचाता है। परन्तु बिना प्रार्थना और चिन्तना ही के मुझे एक अलौकिक प्रियतमा-रत्न प्राप्त कराने की चेष्टा करके तू ने इन दोनों को नीचे कर दिया। इस प्रकार राजा नल उस पक्षी से कही रहा था कि सायङ्काल का शङ्ख बजा और उसे सायन्तनी कृति के लिए, उठकर, महलों में जाना पड़ा*।

क्रोध।

यादरखिए, क्रोध से और विवेक से शत्रुता है। क्रोध विवेक का पूरा शत्रु है। क्रोध एक प्रकार की प्रचण्ड आंधी है। जब क्रोधरूपी आंधी आती है तब दूसरे की बात नहीं सुनाई पड़ती। उस समय कोई चाहे कुछ भी कहे सब व्यर्थ जाता है। आंधी में भी किसी की बात नहीं सुन पड़ती। इस लिए ऐसी आंधी के समय बाहर से सहायता मिलना असम्भव है। यदि कुछ सहायता मिल सकती है तो भीतर ही से मिल सकती है। अतएव मनुष्य को उचित है कि वह पहले ही से विवेक, सुविचार और चिन्ता को अपने हृदय में इकट्ठा कर रक्खे जिसमें क्रोधरूपी आंधी के समय वह उनसे भीतर ही भीतर सहायता ले सके। जब कोई नगर किसी बलवान् शत्रु से घेर लिया जाता है तब उस नगर में बाहर से कोई वस्तु नहीं आ सकती। जो कुछ भीतर होता है वही काम आता है। क्रोधान्ध होने पर भी बाहर की कोई वस्तु काम नहीं आती। इसीलिए हृदय के भीतर सुविचार और चिन्ता की आवश्यकता होती है।

क्रोध ऐसा बुरा विकार है कि वह सुविचार को जड़ से नाश करने की चेष्टा करता है। वह विष है; क्योंकि उसके नशे में भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता। वह मूर्तिमान् मत्सर है; उसके कारण क्षुद्र से क्षुद्र मनुष्य का भी लोग मत्सर करने लगते हैं। क्रोधी प्रत्येक बात पर, प्रत्येक दुर्घटना पर, और प्रत्येक मनुष्य पर, बिना कारण अथवा बहुत ही थोड़े कारण से, बिगड़ उठता है। यदि क्रोध का कारण बहुत बड़ा हुआ तो वह उग्ररूप धारण करता है। और यदि उसका कारण छोटा हुआ तो चिड़चिड़ाहट ही तक उसकी नौबत पहुंचती है। अतएव, या तो वह प्रचण्ड होता है या उपहासजनक। दोनों प्रकार से वह बुरा ही होता है। क्रोध मनुष्य के शरीर को भयानक कर देता है; शब्द को कुत्सित कर देता है; आंखों को विकराल कर देता है; चेहरे को आग के सामान लाल कर देता है; बात चीत को बहुत उग्र कर देता है। क्रोध न तो मनुष्यता ही का चिन्ह है और न स्वभाव के सरल किम्वा आत्मा के शुद्ध होने ही का चिन्ह है। वह भीरुता

---

* सहृदयानन्द काव्य के आधार पर लिखित। स० सं०

अथवा मन की क्षुद्रता का चिन्ह है। क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक क्रोध आता है; निरोग मनुष्यों को अपेक्षा रोगियों को; युवा पुरुषों की अपेक्षा बुड्ढों को; और भाग्यवानों की अपेक्षा अभागियों को। जो मनुष्य क्षुद्र हैं उन्हीं को क्रोध शोभा देता है; सज्ञान, उदार और सत्पुरुषों को नहीं।

जिसे क्रोध आता है वह उसे ही दुःखदायक नहीं होता; क्रोध के समय जो लोग वहां होते हैं उनको भी वह दुःखदायक हो जाता है। चार आदमियों के सामने किसी छोटे से अपराध पर नौकर चाकरों को बुरा भला कहना और उनपर क्रोध करना किसीको अच्छा नहीं लगता। इस प्रकार क्रोध करना और उचित अनुचित बोलना असभ्यता का लक्षण है। क्रोध ही के कारण स्त्री पुरुष में बिगाड़ हो जाता है। क्रोध ही के कारण मित्रों का साथ, सभा समाज का जाना, और जान पहचानवालों के साथ उठना बैठना असह्य हो जाता है। क्रोध ही के कारण सीधी सादी हँसी की बातों से भयानक और शोककारक घटनायें पैदा हो जाती हैं। क्रोध ही के कारण मित्र द्रोह करने लगते हैं। क्रोध ही के कारण मनुष्य अपने आपको भूल जाता है; उसकी विचार-शक्ति जाती रहती है; और बात चीत करने में वह कुछ का कुछ कहने लगता है। क्रोध ही के कारण मनुष्य, किसी वस्तु का चुपचाप ज्ञान प्राप्त न करके, व्यर्थ झगड़ा करने लगता है। जिनको ईश्वर ने प्रभुता दी है उनको क्रोध घमण्डी बना देता है। क्रोध सारासार विचार पर परदा डाल देता है; उपदेश और शिक्षा को क्लेशदायक कर देता है; श्रीमान् को द्वेष का पात्र कर देता है। जो लोग भाग्यवान नहीं हैं वे यदि क्रोधी हुए तो उन पर कोई दया नहीं करता। क्रोध अनेक बुरे विकारों की खिचड़ी है। उसमें दुःख भी है, द्वेष भी है, भय भी है, तिरस्कार भी है, घमण्ड भी है, अविवेकता भी है, उतावली भी है, निर्बोधता भी है। क्रोध के कारण दूसरों को चाहे जितना क्लेश मिले, तथापि जिस मनुष्य को क्रोध आता है उसीको सबसे अधिक क्लेश मिलता है; और उसीको सबसे अधिक हानि भी होती है।

क्रोध से बचने अथवा क्रोध को दूर करने के लिये क्रोध करना उचित नहीं। अपने ऊपर भी क्रोध करने से क्रोध बढ़ता है, घटता नहीं है।

क्रोध से बचने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन में दृढ़ता से पहले यह प्रण करे कि वह उस दिन क्रोध न करैगा, फिर चाहे उसको कितनी ही हानि क्यों न हो। इस प्रकार प्रण करके उसे सजग रहना चाहिए। एक दिन बहुत नहीं होता। यदि वह एक दिन भी क्रोध को जीत लेगा तो दूसरे दिन भी वैसाही प्रण करने के लिए उसमें साहस आजायगा। तब उसे दो दिन क्रोध न करने के लिए प्रण करना उचित है। इस भांति बढ़ाते बढ़ाते क्रोध न करने का स्वभाव पड़ जायगा। क्रोध मनुष्य का पूरा शत्रु है। उसके कारण मनुष्य का जीवन दुःखमय हो जाता है। जिसने क्रोध को जीत लिया, उसके लिये कठिन से भी कठिन काम करना सहल है।

क्रोध को बिलकुल ही छोड़ देना भी अच्छा नहीं। किसीको बुरा काम करते देख उसे पहले मीठे शब्दों से उपदेश देना चाहिए। यदि ऐसे उपदेश से वह उस काम को न छोड़े तो उस पर क्रोध भी करना उचित है। जिस क्रोध से अपने कुटुम्बी, अपने इष्ट मित्र अथवा दूसरों का आचरण सुधरै; ईश्वर में पूज्य बुद्धि उत्पन्न हो; दया, उदारता और परोपकार में प्रवृत्ति हो; वह क्रोध बुरा नहीं।

———

युधिष्ठिर का समय।

संसार में विचार और विवेचना की बड़ी ज़रूरत है। बिना विवेचना के, बिना विचार के, सत्य का ठीक ठीक अनुसन्धान नहीं हो सकता। यदि किसीने सत्य को पाया है तो विचार और विवेचना की ही बदौलत पाया है। जब किसी बात की विवेचना की जाती है तब बहुधा विवाद उपस्थित होता है। क्योंकि विवेचक जिसकी बात, या जिसके मत, का खण्डन करता है, वह, यदि उसे विपक्षी की विवेचना ठीक न मालूम हुई तो, उसका उत्तर देता है। इस तरह वाद-विवाद बढ़ता है, और किसी मत या विषय-विशेष की सत्यता की जाँच करने की ही इच्छा से यदि दोनों पक्ष विवाद पर कमर कसते हैं तो उनका मनोरथ सफल भी हो जाता है। इसीलिये विवेचना की इतनी महिमा है। जान स्टुअर्ट मिल ने तो अपनी "स्वाधीनता" नाम की पुस्तक में विचार और विवेचना का बहुत ही अधिक माहात्म्य गाया है। उसकी राय है कि किसी मत-प्रवर्तक की यदि सचमुच ही यह इच्छा हो कि उसे अपने मत की योग्यता का यथार्थ ज्ञान हो जाय, और उसे कोई विपक्षी न मिलै, तो वह अपने ही मतवालों में से किसीको कल्पित विपक्षी बनाकर उनके साथ वाद-प्रतिवाद करे। बिना इसके उसे अपने मत की सत्यता पर निश्चित विश्वास नहीं हो सकता।

पर वाद-विवाद करने के नियम हैं। मनमानी बात कह देने का नाम विवाद या विवेचना नहीं है। इस बात को हिन्दुस्तान के दार्शनिक महात्माओं ने भी स्वीकार किया है। यदि कोई कहे कि १० और १० इक्कीस होते हैं तो उसका यह उत्तर ठीक अवश्य होगा कि १० और १० इक्कीस नहीं बीस होते हैं। परन्तु विवेचना का यह तरीक़ा ठीक नहीं है। विवेचक को चाहिए कि वह अपने उत्तर को, अपने मत को, मज़बूत दलीलों से साबित करे; और उसके साथ ही प्रतिपक्षी के मत का सप्रमाण खण्डन भी करै। जो यह कहता है कि १० और १० बीस होते हैं, उसे चाहिए कि एक जगह १० और दूसरी जगह ११ लकीरें खींच कर वह अपने प्रतिपक्षी से उन्हें गिनावै और इस बात को साबित करै कि इक्कीस होने के लिए १० और ११ की ज़रूरत होती है। ऐसा करने से उसके प्रतिपक्षी का मत खण्डित हो जायगा। तब वह १० और १० लकीरों को गिना कर यह सिद्ध करै कि उनका जोड़ बीस होता है। इस तरह उसके मत का मण्डन होगा। यह उदाहरण कल्पित है। और भी कई तरह से नियमानुसार यह खण्डन-मण्डन हो सकता है। १० और १० मिल कर बीस होते हैं। यह निर्भ्रान्त है। परन्तु इस प्रकार निर्भ्रान्त उत्तर देनेवाले की तर्क-पद्धति भी जब सदोष मानी जाती है तब भला बिना प्रमाण के यदि कोई १० और १० के जोड़ को २१ या १९ बताने लगै तो उसकी तर्कना-प्रणाली को क्या कहना है! जिस विवेचना में इस प्रकार की पद्धति का अवलम्बन होता है वह हेय और उपेक्ष्य समझी जाती है। उस पर ध्यान न देना ही अच्छा होता है। यह हम किसी को लक्ष्य करके नहीं लिखते। तर्कना का साधारण नियम समझ कर हमने यहां पर इसे लिख दिया है।

सरस्वती में गत वर्ष वराह-मिहिर पर एक लेख निकला। उसमें लेखक ने एक प्रमाण दे कर यह साबित किया कि महाभारत हुए ११००० वर्ष हुए। इसके बाद मदरास की तरफ़ के एक वकील साहब का एक लेख हमने पढ़ा। उसमें लेखक ने यह सिद्धान्त निकाला था कि युधिष्ठिर को हुए सिर्फ़ ३००० वर्ष हुए। उन्होंके नाम का उल्लेख करके यह भी हमने लिख दिया। अपनी तरफ़ से हमने कुछ नहीं लिखा। यह पिछला मत पण्डित गणपति जानकीराम दुबे को ग़लत मालूम हुआ। इस पर उन्होंने एक और सज्जन के मत के आधार पर एक

छोटा सा लेख सरस्वती में छपने के लिए भेजा। उसे भी हमने छाप दिया। इसके अनुसार वर्तमान समय से ७१३१ वर्ष पहले युधिष्ठिर विद्यमान थे। यह मत खुद दुबेजी का नहीं। किन्तु एक दूसरे पण्डित का है। इस पर हमने कहा कि दुबेजी यदि वकील साहब के मत का सप्रमाण खण्डन करके इस नये मत के सच्च होने पर ज़ोर देते तो इसका अधिक गौरव होता। साथही हमने यह भी दिखलाया कि उनके लिखे हुए मत की पुष्टि के लिए भी बहुत सी बातों का उत्तर देना बाक़ी है। यह हमने इस लिए लिखा कि दुबेजी विद्वान् हैं और वाद-विवाद करने के नियमों को जानते हैं। इस लिए वे हमारे कहने को बुरा न समझेंगे।

जिस समय दुबेजी का लेख हमारे पास आया, हम कनिंहाम साहब की पुरातत्व-सम्बन्धी रिपोर्टें पढ़ रहे थे। उनमें एक अध्याय देहली के ऊपर था। उसमें युधिष्ठिर के सम्बन्ध में गम्भीर गवेषणा से भरा हुआ एक लेख था। वह हम दोही चार दिन पहले पढ़ चुके थे। इस लिए दुबेजी के लेख पर नोट देते समय हमने कनिंहाम साहब का मत भी लिख दिया। उनके मत में महाभारत हुए कोई सवा तीन हज़ार वर्ष हुए। हमने अपने मनमें कहा कि जब सब अपने अपने मत लिख रहे हैं तब इनका भी सही। जो अपने मत को सबल और विश्वसनीय प्रमाणों से सच्चा साबित कर देगा उसीका मत मान्य हो जायगा। किसी अङ्गरेज़ या मुसल्मान की राय लिख देना क्या कोई अनुचित बात है?

इस पर हमारे सुविज्ञ प्रयागसमाचार ने हमारे नोट पर एक लेखमालिका निकालनी शुरू की है। इस मालिका का पहला नम्बर ५ मार्च के प्रयागसमाचार में निकला है। आपकी राय है कि विलायती पण्डितों के पुरातत्व-विषयक सिद्धान्त भ्रान्तिमूलक और अविश्वसनीय होते हैं। सब नहीं; उतने ही जितने "हम लोगों" के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। पर हमारी मन्दबुद्धि में यह आता है कि एक आदमी का सिद्धान्त दूसरे आदमी के सिद्धान्त के विरुद्ध होने ही से वह भ्रान्तिमान् या विश्वासहीन नहीं हो सकता। विरोध होना अविश्वसनीयता का चिन्ह नहीं है। देशियों के भी सिद्धान्त भ्रान्तिमूलक हो सकते हैं और विदेशियों के भी। पर प्रमाण की अपेक्षा होती है। क्या स्वदेशियों के सभी सिद्धान्त विश्वसनीय होते हैं? क्या कृष्णचरित के कर्ता के सब सिद्धान्त भ्रान्तिहीन हैं? क्या पुराणों को प्रक्षिप्त, श्रीकृष्ण की अलौकिक लीलाओं को कपोलकल्पना और वृन्दावनविहार-सम्बन्धिनी पौराणिक कथा को "अतिप्रकृत उपन्यास" मानने के लिए सब लोग तैयार हैं? ये सब सिद्धान्त बङ्कीम बाबू ही के तो हैं। ये उन्हींके कृष्णचरित में हैं न?

हमारी प्रार्थना है कि युधिष्ठिर के समय का हमने ज़रा भी अनुमान नहीं किया। यदि किसी ने किया है तो बङ्कीम बाबू और जनरल कनिंहाम ही ने किया है। हमारा अपराध सिर्फ़ इतना ही है कि हमने कनिंहाम के अनुमान को लिख भर दिया है। इसके लिए हम प्रयागसमाचार से क्षमा मांगते हैं। हमने कनिंहाम साहब के अनुमान को दस पांच सतरों में लिख दिया, आपने बङ्कीम बाबू के अनुमान को कई कालमों में। हमारे और आपके लेख में फ़रक इतना ही जान पड़ता है।

हमने कनिंहाम साहब के मत की जांच करने की ज़रा भी कोशिश नहीं की। क्योंकि युधिष्ठिर का समय निर्णय करने के अभिप्राय से हमने अपना नोट लिखा ही नहीं। अतएव उनके उल्लिखित प्रमाणों को पुराणों में ढूंढ़ने की हमने कोई ज़रूरत नहीं समझी। जिसे युधिष्ठिर के समय का निर्णय करना हो वह उन्हें देखे और यदि कनिंहाम ने अपने अनुमान में ग़लतियां की हों तो उनको सुधार दे। यदि प्रयागसमाचार की यह राय हो कि दूसरे के अनुमान को कोई तब तक नहीं लिख सकता जब तक उस अनुमान की साधनीभूत सामग्री को वह खुद न देख ले और उसकी सत्यता पर उसका

विश्वास न हो जाय, तो मानों यह कबूल कर लेना होगा कि बङ्कीम बाबू के निर्णय में संस्कृत और अङ्करेज़ी के जितने ग्रन्थों का नाम आया है उन सबको आप ने देख लिया है और उल्लिखित वाक्यों की यथार्थता की परीक्षा भी करली है।

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार बङ्कीम बाबू ने कृष्णचरित नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने महाभारत के काल का निर्णय भी किया है। उसी निर्णय का भावार्थ प्रयागसमाचार ने देना शुरू किया है।

बङ्कीम बाबू कहते हैं कि योरप के किसी किसी पण्डित का मत है कि महाभारत ईसा के चार पांच सौ वर्ष से अधिक पुराना ग्रन्थ नहीं है। पर स्वदेशीय पण्डितों की सम्मति है कि महाभारत वर्तमान समय से कोई पांच हज़ार वर्ष पहले का है। इन दोनों मतों को बाबू साहब "घोरतर भ्रम-परिपूर्ण" बतलाते हैं। महाभारत कब हुआ इस सम्बन्ध में आपने अपनी मीमांसा में जिन ग्रन्थों और ग्रन्थकारों का मत दिया है उनकी तालिका इस प्रकार है—

विष्णुपुराण	ईसाके पहले १४३० वर्ष
मत्स्य और वायुपुराण	,, १४६५ ,,
कोलब्रुक, विलसन और एलफिंस्टन	,, चौदहवीं शताब्दी
विलफ़र्ड	,, १३७० वर्ष
बुकानन	,, तेरहवीं शताब्दी
प्राट	,, बारहवीं शताब्दी

इन सब मतों में से बङ्कीम बाबू विष्णुपुराण के ही मत को सबसे अधिक ठीक समझते हैं। आप अपनी पुस्तक में लिखते हैं—"विष्णुपुराण से ईसा के १४३० वर्ष पहले की प्राप्ति होती है; वही ठीक है। मुझे भरोसा है कि इन सब प्रमाणों को सुनकर अब कोई यह न कहेगा कि महाभारत का युद्ध द्वापर के शेष में, पांच हज़ार वर्ष पहले, हुआ था"। अच्छा, तो विष्णुपुराण ही का मत बङ्कीम बाबू का हुआ। तदनुसार महाभारत का युद्ध ईसा के १४३० वर्ष पहले हुआ; द्वापर के अन्त में नहीं। प्रयागसमाचार को भी शायद यही मत ठीक जँचा है। अच्छा। १४३० में १९०४ जोड़ दीजिए। फल ३३३४ वर्ष हुए। अब गत फ़रवरी की सरस्वती का बयालीसवां पृष्ठ देखिए। वहां लिखा है कि—"इस हिसाब से महाभारत को हुए कोई सवातीन हज़ार वर्ष हुए"। कनिंहाम साहब और बङ्कीम बाबू का मत एक हो गया। क्योंकि ८४ वर्ष का अन्तर कोई अन्तर नहीं। फिर हमारे 'कोई' शब्द पर भी तो ध्यान देना चाहिए। परीक्षित का जन्म साहब ने ईसा के १४३० वर्ष पहले अनुमान किया है। ठीक वही समय विष्णुपुराण और बङ्कीम बाबू के मत में महाभारत का है। अब बङ्कीम बाबू के निर्णय और कनिंहाम के अनुमान में भेद कहां है, यह समझ में नहीं आता। किस निमित्त यह परिश्रम हो रहा है, क्यों यह लेखमाला निकाली जा रही है, अभी तक यह हमारे ध्यान ही में नहीं आया। शायद अन्त की माला में इसका रहस्य खुले। बङ्कीम बाबू ने अपनी पुस्तक में विलायती पण्डितों को दो चार उलटी सीधी सुनाई हैं। उनका अनुवाद करके पाठकों का मनोरञ्जन करने के लिए यदि यह परिश्रम हो तो हो सकता है।

गीता हिन्दुओं की सबसे पूज्य पुस्तक है। उसमें लिखा है—

"शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः"।

तब यदि हैट-कोट धारी कोई मनुष्य कुछ कह दे तो क्या उसके हैट-कोट के कारण ही उसकी बात अविश्वसनीय हो जाय? ऐसा तो नहीं हो सकता। यदि उसके कथन में कुछ सार है तो उसे ले लीजिए, और यदि नहीं है तो जाने दीजिए;—यह कोई न्याय नहीं कि बिना प्रतिकूल प्रमाण के ही हैट-कोट और बूटवालों का पुरातत्व-सम्बन्ध में कुछ कहना सर्वथा अश्रद्धेय है और तिलक, माला और पगड़ी वालों का कहना सर्वथा श्रद्धेय है। बङ्कीम बाबू के चित्र में भी हम पगड़ी देखते हैं, परन्तु कृष्णचरित में उन्होंने बहुत सी ऐसी बातें कही हैं जिनको सुनकर धार्मिक हिन्दू शायद कांप उठें।

बङ्कीम बाबू के लेख का प्रयागसमाचार के मान्यवर सम्पादक ने जो भाव हिन्दी में दिया है उसमें कई जगह दृष्टि-दोष हो गया है। इसके दो एक उदाहरण हम देते हैं—

मूल—कृष्णचरित—१म खण्ड, ४र्थ परिच्छेद	हिन्दी-भावार्थ
(१) महाभारत प्राचीन ग्रन्थ बटे, किन्तु खि० पू० चतुर्थ कि पञ्चम शताब्दी ते प्रणीत हइयाछिल।	महाभारत प्राचीन ग्रन्थ तो है परन्तु अब से चार अथवा पांच शताब्दी पूर्व रचा गया।
(२) पूर्वोक्त ग्रन्थ, पञ्चम परिच्छेद	हिन्दी-भावार्थ
प्रथमे, देशी मतेरई समालोचना आवश्यक। ४९९२ वत्सर पूर्वे कुरुक्षेत्रेर युद्ध हइयाछिल, ए कथा सत्य नहे; इहा आमि देशी ग्रन्थ अवलम्बन करियाई प्रमाण करिब।	जो लोग यह कहते हैं कि कुरु-क्षेत्र में महायुद्ध के अधिवेशन को हुए केवल ४९९२ वर्ष व्यतीत हुए हैं, यह उनका कहना सत्य नहीं है। इस बात को अवलम्बन कर हम आगे सिद्ध करेंगे।

पहले अवतरण के हिन्दी-भावार्थ में "खि० पू०" के छुट जाने से हज़ारों वर्ष का अन्तर हो गया। दूसरे अवतरण में और बातों को जाने दीजिए, सिर्फ़ "केवल" शब्द को देखिए। अकेले इस शब्द के आ जाने से अर्थ का अनर्थ हो गया। यह शब्द मूल में नहीं है। ये त्रुटियां जान बूझ कर नहीं की गईं। सिर्फ़ असावधानता से हुई हैं। परन्तु हमारे माननीय सहयोगी का मतलब यदि सत्य के ढूंढ़ने का है तो उसे अधिक सावधान रहना चाहिए और गोरे-काले का ख़याल कम रखना चाहिए। अगर गोरा भी कोई बात सच्ची कह दे तो उसे भी मान लेना चाहिए।

सुविज्ञ प्रयागसमाचार से हमारी यह प्रार्थना है कि जो कुछ हमने लिखा है सिर्फ़ सत्य के अनुरोध से लिखा है। यदि हम से कोई शब्द अनुचित निकल गया हो तो उसके लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। जिस लेख का यह उत्तर है उसके आरम्भ में कई बातें ऐसी हैं जिनका उत्तर देना, या जिन पर कुछ कहना, हमने मुनासिब नहीं समझा। युधिष्ठिर के समय का निर्णय होना महत्व की बात है। इसी ख़याल से प्रार्थना के रूप में जो कुछ कहना था हमने कह दिया है। यदि और कोई ऐसी वैसी बात होती तो हम चुप रहने के सिवा और कुछ न करते—७ मार्च १९०५।

सत्यव्रत युधिष्ठिर के काल का निर्णय हो चुका। तीन खण्डों में उसकी समाप्ति हुई। अन्तिम, अर्थात् तीसरा खण्ड, २ एप्रिल के प्रयागसमाचार में निकला। २ मई तक हमने और राह देखी कि शायद इसके भी आगे कोई टीका-टिप्पणी निकले, परन्तु और कुछ नहीं निकला। बङ्कीम बाबू के कृष्णचरित के प्रथम खण्ड के सातवें परिच्छेद का नाम है "पाण्डवों की ऐतिहासिकता"। उसीका अनुवाद देकर यह लेखमालिका पूरी कर दी गई। लेख का अन्तिम फलांश यह है—

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में, उपासना अर्थ के बोधक वासुदेवक और अर्जुनक शब्द की व्युत्पत्ति दी है। गोल्डष्टुकर साहब का मत है कि जब पाणिनिसूत्र बने थे तब गौतम बुध नहीं पैदा हुए थे। अर्थात् पाणिनि का काल ईसा के पहले छठी शताब्दी कहा जा सकता है। उनके मतमें उस समय ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद इत्यादि कुछ न थे, और न आश्वलायन, सांख्यायन आदि का ही अभ्युदय हुआ था। मोक्षमूलर के मत में ब्राह्मणों का समय ईसा के पहले १००० वर्ष है। अतएव बङ्कीम बाबू ने पाणिनि का समय ईसा के पहले अधिक से अधिक दशम या एकादश शताब्दी अनुमान किया। आपने वेबर साहब को

"भारतद्वेषी" को ग्रैार उन्हींके देशवासी गोल्ड-ष्टुकर को "ग्राचार्य" की पदवी दी है। ग्रस्तु। इससे यह सूचित हुग्रा कि ईसा के हज़ार वर्ष पहले ही महाभारत प्रचलित था ग्रैार वासुदेव तथा ग्रर्जुन ग्रादि की गिनती देवताग्रों में होने लगी थी। यदि ऐसा न होता तो पाणिनि को वासुदेवक ग्रैार ग्रर्जुनक शब्दों की साधना न बतलानी पड़ती। ग्रच्छा, महाभारत तो ईसा के हज़ार वर्ष पहले प्रचलित था। पर युधिष्ठिर किस समय विद्यमान थे? ग्रथवा महाभारत का युद्ध कब हुग्रा था? वही ईसा के पहले १४३० वर्ष। वही विष्णुपुराण का मत जिसे बङ्कीम बाबू ने पसन्द किया है। क्योंकि उन्होंने उसका कहीं खण्डन नहीं किया। युद्ध होने के बाद तीन चार सौ वर्ष में वासुदेव ग्रैार ग्रर्जुन इत्यादि की गिनती देवताग्रों में होने लगी होगी। यही बङ्कीम बाबू का मत है।

सुविज्ञ सम्पादक जी ने किस लिए इतना परिश्रम किया; किस लिए यह लेखमालिका निकाली सो बात हमारी समझ में फिर भी नहीं ग्राई। ख़ैर, कुछ तो ग्रापने समझा ही होगा। सम्भव है हम ग्रापके मतलब को न समझे हों। पर एक प्रार्थना ग्राप से हमारी है। वह यह कि यदि ग्राप किसीका मत लिखा करें, या किसीके मत की समीक्षा किया करें, तो ज़रा सावधानी से किया करें। कुछ का कुछ न लिख दिया करें। ग्रापकी ग्रसावधानता के दो एक उदाहरण हम ग्रैार दिखलाये देते हैं। वे भी ग्रनुवादसम्बन्धी हैं—

कृष्ण चरित—सप्तम परिच्छेद	प्रयागसमाचार का भावार्थ
(१) ग्रार इहाग्रो सम्भव, ये ताँहार (पाणिनिर) ग्रनेक पूर्वेइ महाभारत प्रचलित हइयाछिल।	ग्रैार यह भी सिद्ध हो गया कि उनके (पाणिनिके) बहुत पूर्व से महाभारत प्रचलित था।
(२) ग्रतएव महाभारतेर युद्धेर ग्रनल्प परेइ ग्रादिम महाभारत प्रणीत हइयाछिल बलिया ये प्रसिद्धि ग्राछे, ताहार उच्छेद करिबार कोन कारण देखा याय ना।	इससे ग्रब सिद्ध हो गया कि महाभारत युद्ध के थोड़े ही पीछे जो ग्रादि महाभारत बनाकर शामिल करने का दोष दिया जाता है इसके खण्डन की ग्रब कोई ग्रावश्यकता नहीं है।
(३) ग्रतएव महाभारतेर प्राचीनता सम्बन्धे बड़ गोलयोग करार काहारग्रो ग्रधिकार नाइ।	ग्रतएव महाभारत की प्राचीनता में हस्तक्षेप करने का किसीको ग्रधिकार नहीं है।

यहां पर पहले ग्रवतरण में जलदी या ग्रसावधानता के कारण "सम्भव" शब्द का ग्रर्थ "सिद्ध हो गया" कर दिया गया। सम्भव ग्रैार सिद्ध होने में कितना ग्रन्तर है इसके बतलाने की ज़रूरत नहीं। दूसरे ग्रवतरण का हिन्दी-भावार्थ हमारी समझ में बिलकुल ही नहीं ग्राया। बँगला-वाक्य का मतलब है—"ग्रतएव जो यह प्रसिद्धि है कि महाभारत-युद्ध के कुछ ही पीछे ग्रादिम महाभारत की रचना हुई थी उसके उच्छेद, ग्रर्थात्, खण्डन का कोई कारण नहीं देख पड़ता"। ग्रनुवाद में "महाभारत बनाकर शामिल करने का दोष" कहां से ग्राया, नहीं मालूम। ग्रैार, वाक्य सार्थक भी तो होना चाहिए। तीसरे ग्रवतरण में "गोलयोग" का ग्रर्थ "हस्तक्षेप" भी जल्दी में लिख दिया गया है। "हस्तक्षेप" की जगह "गोलमाल" शब्द ग्राता तो वह मूलार्थ का ग्रधिक बोधक होता। हस्तक्षेप ग्रैार गोलमाल में फ़रक है—४ मई १९०५।

कालिदास की वैवाहिक कविता।

कालिदास में एक बहुत बड़ी ख़ूबी है। दूसरों के मनोविकारों की तसवीर उतारने में कालिदास का सानी नहीं देखा जाता। इस गुण में कालिदास अद्वितीय हैं—इसी देश में नहीं, दुनिया भर में। यह बात कालिदास की कविता में जगह जगह पर पाई जाती है। यदि किसी निरपराध आदमी का सिर काटा जाने लगे; यदि कोई कायर आदमी किसी ख़ूंख़ार शेर के सामने आजाय; यदि कोई वेदान्त-वागोश चिता पर चढ़ी हुई किसी लाश को देख ले, तो उसके मन में उस समय जिन जिन विकारों का उत्थान होगा उनका वह अनुभव तो अवश्य करेगा; परन्तु उनको शब्दद्वारा चित्र की तरह वह दूसरों को दिखला न सकेगा। उसके लिए उसे कालिदास की शरण जाना पड़ेगा। कालिदास ही में यह विलक्षण और लोकोत्तर शक्ति है। वही एक ऐसा कवि है जो दूसरे के विकारों का चित्र खींचकर रविवर्म्मा के भी चित्राङ्कन-अभिमान को चूर्ण कर सकता है।

श्रीहर्ष ने लिखा है कि दमयन्ती की प्राप्ति के अनन्तर नल के घर में वे वे बातें हुईं जो "महाकविभिरप्यवीक्षिताः" थीं, अर्थात् जिनको महाकवियों ने भी नहीं देखा था। इससे यह सूचित होता है कि जिन बातों को और लोग नहीं देख सकते उनको भी महाकवि देख लेते हैं। पर नल ने महाकवियों को भी मात दे दिया; क्योंकि उसने ऐसी भी अनेक बातों का अनुभव किया—उनको कर दिखाया—जिनका स्वप्न महाकवियों तक ने भी नहीं देखा था। इसकी सत्यता की गवाही महाकवि ही दे सकते हैं। पर एक बात यह ज़रूर सच है कि जो बातें औरों को नहीं सूझतीं वे कवियों को ज़रूर सूझ जाती हैं। यही नहीं किन्तु वे उनका वर्णन भी कर सकते हैं, और ऐसा अच्छा कर सकते हैं कि वर्णित विषय की तसवीर सी खिंच जाती है। जितने रस और जितने भाव हैं सब मन के विकार हैं। और कुछ नहीं। इन विकारों के उत्कृष्ट शब्दचित्र का ही नाम कविता है।

कुमारसम्भव की पहले पहल सैर किये हमें कोई १८ वर्ष हुए। हम सातवां सर्ग देखते थे। इस सर्ग में शङ्कर ने अरुन्धतीसहित सप्तर्षियों को हिमवान् के पास भेजकर पार्वती की मँगनी की है। यह उन्होंने पार्वती ही की इच्छा से किया है। जब उन्होंने पार्वती की तपस्या से प्रसन्न होकर उनके पाणिग्रहण का अभिवचन दिया, तब पार्वती ने अपनी सखी के द्वारा उनसे यह कहलाया कि आप कृपा करके मुझे मेरे पिता हिमवान् से माँग लें और उनकी अनुमति से यथाविधि मेरा ग्रहण करें। शङ्कर ने यह बात स्वीकार की। इसलिए उन्होंने सप्तर्षियों को हिमाचल के पास भेजा। वे हिमाचल के घर गये। हिमाचल उस समय बैठे हुए थे। उनकी पत्नी मेना और कन्या पार्वती भी वहीं उनके पास थीं। इन दोनों के सामने ही ऋषियों ने पार्वती के विवाह की बात छेड़ी। पार्वती तरुणी थीं। विवाह की बातें समझती थीं। शिव को स्वामी बनाने ही के इरादे से उन्होंने तप किया था। परन्तु विवाह-वार्ता शुरू होने पर कई श्लोकों तक पार्वती की कोई चेष्टा का वर्णन जब हमको न मिला तब हमारे हृदय में कालिदास से विराग उत्पन्न हुआ। जिसके विवाह की बातचीत हो रही है वह समझदार है; वह वहीं बैठी हुई है; वह मन ही मन प्रसन्न ज़रूर होती होगी। फिर उसकी किसी चेष्टा का उल्लेख क्यों नहीं? यह कैसी महाकविता है? साधारण आदमियों को भी यह बात खटके, पर महाकवि को नहीं? आश्चर्य! इस प्रकार के उपालम्भ का क़िला हमारे मन में बनकर तैयार होने ही को था कि कालिदास की कवितारूपिणी विशाल तोप से एक छोटे, पर बड़े ही प्रभावशाली, गोले ने निकलकर उसे एक दम ढहा दिया। उस

को दीवारें चूर हो गईं। उसके बुर्ज ज़मीन पर गिरकर ढेर हो गये। उसके साथ ही एक ऐसे प्रासादिक कवि की सहृदयता पर मन में आक्षेप करने के लिए हमको खेद भी हुआ और अफ़सोस भी हुआ। दोही एक श्लोक हम आगे बढ़े थे कि कालिदास ने अपने महाकवित्व का हमें वह परिचय दिया जो हमको कभी नहीं भूलेगा। उससे, उस समय, जो आनन्द हमको हुआ वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। कालिदास ने सहसा कह दिया—

> एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
> लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती॥

इस तरह अपने विवाह की बातें जिस समय देवर्षि कर रहे थे, उस समय पिता के पास सिर झुकाये हुए पार्वती क्या करती थीं? कुछ नहीं। चुपचाप बैठी हुई कमलों के दलों को वह सिर्फ़ गिन रही थीं! कैसी अद्भुत कविता है। कैसा अद्भुत भाव है। मन में उत्पन्न हुए आनन्दातिशय को छिपाने की कोशिश करके भी पार्वती ने कमल-दलों को गिनकर उसे स्पष्ट प्रकट कर दिया। उस समय जो विकार पार्वती के हृदय में उद्भूत हुए थे, उनको शब्दद्वारा बतलाने की यदि हज़ार कोशिशें की जातीं तो भी उस शब्दचित्र में वह रस न आता जो इस निरर्थक कमल-गणना की उक्ति में आया है। सिर्फ़ महाकवि ही ऐसी उक्तियां कह सकते हैं।

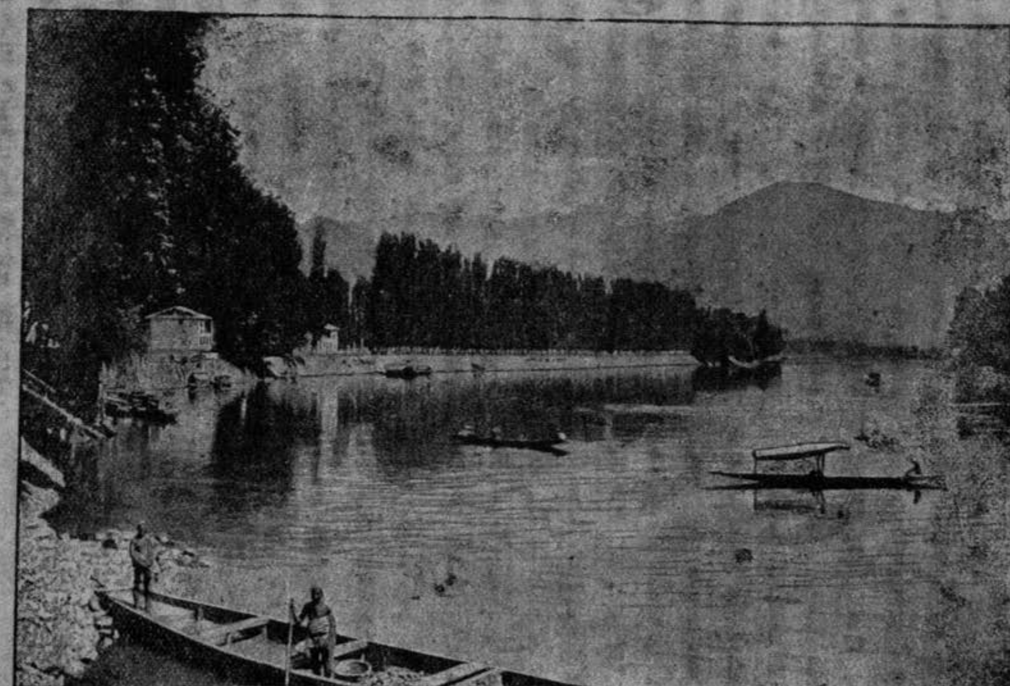
इस कविता-प्रसङ्ग से यह बात सूचित होती है कि कालिदास के ज़माने में तरुण लड़कियां माता पिता के पास बाहरी आदमियों के सामने भी निःसङ्कोच बैठती थीं और अपने विवाह तक की भी बातें चुपचाप बैठी सुना करती थीं; उठ न जाती थीं। इससे एक बात यह भी सिद्ध होती है कि उस समय वर, या वरपक्षवाले, भी कन्या की याचना करते थे। राजपूतों में इस रीति को बन्द हुए अभी बहुत समय नहीं हुआ। शायद उनमें यह रीति अब तक प्रचलित हो। परन्तु शङ्कर के मुँह से "याचितव्यो हिमालयः"—यह बात निकलते ज़रा खटकती है। यदि हिमवान् खुद याचना करते तो क्या हानि थी?

कुछ समय हुआ हमें एक विवाह-समारम्भ-सम्बन्धी बहुत सी बातें, अपने जन्मस्थान में, सुनने को मिलीं। इससे कुमारसम्भव की वैवाहिक उक्तियां हमको स्मरण हो आईं और कालिदास के दो चार श्लोक हमारे हृदय में फिर से नये हो गये। उनको हम अपने पाठकों को सुनाना चाहते हैं।

पार्वती के विवाह की तैयारी हो रही है। मङ्गल-स्नान के अनन्तर एक सखी उसका शृङ्गार कर रही है। जब वह पैरों में लाक्षारस (महावर) लगा चुकी, तब एक पैर पर हाथ रखकर पार्वती से वह कहती है—

> पत्युः शिरश्चन्द्रकलामनेन स्पृशेति सख्या परिहासपूर्वम्।
> सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निर्वचनं जघान॥

पैरों में महावर लगाकर, और आशीर्वाद देकर, पार्वती को सखी ने उससे दिल्लगी में यह कहा, कि इसी पैर से तू अपने पति के शीशवाली चन्द्रकला को स्पर्श कीजियो। यह सुनकर पार्वती मुँह से तो कुछ नहीं बोली, पर अपना पुष्पमाल्य फेंक कर उससे सखी को उसने मारा। पार्वती की इस क्रिया में विहृत-नामक अनुभाव हुआ। उसकी यह क्रिया बहुत ही सामयिक हुई। कुछ न कह कर भी इसके द्वारा गोया उसने अपना हृदय खोलकर सखी के सामने रख दिया। "स्पृश" अर्थात् "स्पर्श कर"—यह सिर्फ़ दो अक्षर का संस्कृत पद है। परन्तु इस इतने छोटे पद के पेट में एक नहीं अनेक व्यङ्ग्य भरे हुए हैं। और वे बहुत गूढ़ भी नहीं हैं; ऐसे हैं जिनका स्वाद सामान्य जन भी सहज में ले सकते हैं। पर कालिदासजी हम को माफ़ करें, हमें यहां पर एक शिकायत है। पार्वती की एतत्कालीन चेष्टा-वर्णन में हमें एक बात की कमी मालूम होती है। यहां पर "निर्वचनं" (चुपचाप) के आगे "सस्मितं", "सभ्रूभङ्ग" या "कुटिलेक्षणं" के सदृश किसी क्रियाविशेषण



काश्मीर का बाहरी दृश्य—दूर से।
यहां भूकम्प बड़े वेग से हुआ।



काश्मीर में मारकल की नहर—जहां भूकम्प
बड़े वेग से हुआ।

की बड़ोही ज़रूरत थी। "निर्वचनं" चाहे न भी होता; पर इनमें से एक भाव विशेषण होना चाहिए था। सारे सरस, सहृदय और काव्यकर्म्मज्ञ जन इसके प्रमाण हैं। ऐसे अवसर पर सम्भव नहीं कि स्मित या भ्रूभङ्ग न हो।

रघुवंश में, कुछ कुछ एक ऐसे ही मौके पर, ख़ुद कालिदास ही ने "वधूरसूयाकुटिलं ददर्श" कहा भी है। स्वयम्वर में इन्दुमती ने अजकुमार को पसन्द किया। यह बात इन्दुमती की सखी सुनन्दा को मालूम हो गई। तब उसने इन्दुमती से दिल्लगी की। उसने कहा अब यहां इस राजकुमार के सामने खड़ी क्या कर रही हो? चलो, और किसीको देखें। यह सुनते ही इन्दुमती ने सुनन्दा को तिरछी नज़र से देखकर असूया प्रकट की। वैसा ही कोई अनुभाव यहां भी होता तो क्या ही अच्छा होता।

जब पार्वती का वैवाहिक शृङ्गार हो चुका तब उसने आईने में अपना मुँह देखा। इस पर महाकविजी कहते हैं—

आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः॥

अपने शोभाशाली रूप को निश्चल नयनों से आईने में देख कर शङ्कर की प्राप्ति के लिए पार्वती बहुत ही व्यग्र हो उठी। उसकी उत्सुकता यहां तक बढ़ गई कि उसने तत्काल ही अपने भावी पति शङ्कर के सामने जाने की अभिलाषा मन में ज़ाहिर की। उसी रात को उसका पाणिग्रहण था। परन्तु उस समय तक ठहरना उसे नागवार हुआ। सच है—सिर्फ़ अपने प्रियतम के देखने के लिए ही वेष-भूषा का आडम्बर किया जाता है। उसी फल के पाने की अभिलाषा से रूपप्रसाधन का परिश्रम स्त्रियां उठाती हैं। यदि उसकी प्राप्ति न हो तो वह परिश्रम ही व्यर्थ जाय। इससे यह सूचित हुआ कि और किसी निमित्त वह रचना नहीं होती और यदि हो तो वह व्यर्थ है। क्योंकि पार्वती के समान त्रैलोक्यमोहिनी नारी का एकमात्र फल जब अपने ऊपर अपने प्रेममूर्ति पति की एक नज़र पड़ जाना ही है तब प्राकृत स्त्रियों की बात ही क्या? इस पद्य की आत्मा, इसका प्राण, इसका जीव "स्त्रीणां प्रियालोकफलो हि वेषः" यह इसका चौथा चरण है।

इस प्रकार वसनभूषणों से सज्जित पार्वती को उसकी माता मेना ने आज्ञा दी कि वह नगर की सौभाग्यवती स्त्रियों को प्रणाम करे। आज्ञानुसार पार्वती ने उनके सामने सिर झुकाया। इस पर कालिदास ने यह कविता की—

अखण्डितं प्रेम लभस्व पत्युरित्युच्यते ताभिरुमा स्म नम्रा।
तया तु तस्यार्द्धशरीरभाजा पश्चात्कृताः स्निग्धजनाशिषोऽपि॥

स्त्रियों को स्त्रियां अकसर इस तरह के आशीर्वाद देती हैं—"चिरञ्जीव"; "चिर सौभाग्यवती भव"; "अष्टपुत्रा भव"। परन्तु उनके लिए इन सबसे अधिक प्यारी आशीष—"पतिप्रेयसी भव" है। स्त्रियों के लिए पति की प्रेयसी होने से बढ़कर और कोई सुख नहीं है—और कोई आशीष नहीं है। सौभाग्यवती होकर भी, अष्ट-पुत्रा होकर भी, सम्भव है, स्त्रियां पतिप्रेयसी न हों—पति उन से निर्विशेष प्रेम न रक्खे। इसीलिए महाकवि बहुधा यही पिछली आशीष स्त्रियों को देते हैं। यही कारण है जो तुलसीदास ने कहा है—

होहु सदा तुम पियहि पियारी।
चिर अहिवात असीस हमारी॥

इसी ख़याल से कालिदास ने भी ऊपर का श्लोक कहा है। उसमें आप कहते हैं—सिर झुकाये हुए उमाको उन सती स्त्रियों ने यह आशीर्वाद दिया कि अपने पति का अखण्डित, अर्थात् सम्पूर्ण, प्रेम—जिसका ज़रा भी अंश और किसीको नहीं मिला है—तुझे मिले। आशीर्वाद हमेशा बढ़कर दिया जाता है और पूरे आशीर्वाद का फल बिरली ही स्त्री को मिलता है। परन्तु उमा ठहरी उस्ताद। आशीर्वाद देनेवाली उन सौभाग्यवती नारियों के आशीर्वाद से भी हज़ारों गुने अधिक फल को वह

दबा बैठी। उसने अपने पति का आधा शरीर ही छीन लिया। वह अपने पति की इतनी प्रेयसी हो गई कि पति ने उसे अपने आधे शरीर ही में स्थान दे दिया। अर्थात् प्रेम की परमाकाष्ठा हो गई। पार्वती ने प्रेम-प्राप्ति की सीमा का भी उल्लंघन कर दिया। और यह सीमोल्लंघन कालिदास की बदौलत एक नये रूप-रङ्ग में हम लोगों को देखने को मिला।

जब कालिदास ने पार्वती से फ़ुरसत पाई तब आप शङ्कर की तरफ़ बढ़े। उनकी बारात का साज सामान ठीक करके उनके साथ विवाह-समारम्भ में शामिल होनेवाले देवतादिकों को इकट्ठा करके, और दूलह की अलौकिक रूप-रचना आदि का वर्णन करके आपने जब उन्हें तैयार पाया, तब उनके यहां आये हुए लोकपालादि को उनके सामने पेश किया। जिस ज़माने का हाल कालिदास ने लिखा है, जान पड़ता है, उस ज़माने का रङ्ग ढङ्ग भी आज कल का ऐसा था। किसी बड़े अफ़सर से भेंट करने में जो जो नाज़ व नख़रे आजकल होते हैं, वे उस ज़माने में भी होते थे। लोकपाल और देवताओं ने शङ्कर के दरबान नन्दी से जब बहुत कुछ मिन्नत आरज़ू की तब कहीं आपने अपने मालिक से मुलाक़ात कराई। क़ायदे के साथ आप एक एक को शङ्कर के सामने ले गये और कहा—"यह इन्द्र आपको प्रणाम करते हैं; यह चन्द्र आपके सामने हाज़िर हैं; यह उपेन्द्र आपके साथ चलने की अभिलाषा से आये हैं"। इस प्रकार परिचय कराये जाने पर सबके प्रणाम और नमस्कार आदि का उत्तर महादेव ने किस प्रकार दिया सो सुनिए—

कम्पेन मूर्ध्नः शतपत्रयोनिं वाचा हरिं वृत्रहणं स्मितेन ।
आलोकमात्रेण सुरानशेषान् सम्भावयामास यथाप्रधानम् ॥

सिर हिला कर ब्रह्मा के, सम्भाषण से विष्णु के, मुसकान से इन्द्र के और सिर्फ़ एक नज़र से देख कर और और देवताओं के प्रणाम और नमस्कार आदि का उत्तर शङ्कर ने दिया। अर्थात् जो जैसा था उसकी छुटाई बड़ाई के हिसाब से आपने सब की ख़ातिरदारी की। आजकल गवर्नमेण्ट के पोलिटिकल महकमे ने जिस तरह स्वदेशी राजाओं की इज्ज़त आबरू को तौल कर सब की सलामी और मुलाक़ात वग़ैरह के क़ायदे बनाये हैं, जान पड़ता है, वैसे ही क़ायदे कालिदास के ज़माने में भी थे।

जब शङ्कर ने अपने सहचारियों के साथ हिमवान् के पुर में प्रवेश किया तब स्त्रियों में विलक्षण खलबली मच गई। जो जिस हालत में थी वह उसी हालत में विरूपाक्ष वर को देखने दौड़ी। यहां पर कालिदास की एक बात हमको पसन्द नहीं आई। इस मौक़े पर उन्होंने कुमारसम्भव में जो कविता की है उसका बहुत सा अंश उन्होंने रघुवंश में इन्दुमती और आज के विवाह-वर्णन में उठाकर वैसा ही रख दिया है। दस पांच श्लोक बिलकुल वैसे ही उठा लिये गये हैं। कुछ श्लोकों के एक एक दो दो चरण आपने तद्वत् ले लिये हैं। कुछ श्लोकों का सिर्फ़ भाव आपने थोड़ा सा बदल दिया है। ऐसा करने में यद्यपि उन्होंने किसीकी चोरी नहीं की, तथापि उन पर न्यूनता का दोष ज़रूर आता है। जो महाकवि है, जिस पर सरस्वती की अनन्य कृपा है, वह एक प्रसङ्ग की कविता से दूसरे प्रसङ्ग को क्यों अनुरञ्जित करे? क्यों न वह नई पद्यरचना से नये प्रसङ्ग की रञ्जना करते हुए अपनी अलौकिक कवित्व-शक्ति का परिचय दे? अस्तु।

इस मौक़े पर स्त्रियों की जिन चेष्टाओं का वर्णन कालिदास ने किया है उन सबको हम छोड़े देते हैं। इस विषय का सिर्फ़ एकही पद्य हम देते हैं। वह यह है—

तमेकदृश्यं नयनैः पिबन्त्यो नार्यो न जग्मुर्विषयान्तराणि ।
तथा हि शेषेन्द्रियवृत्तिरासां सर्वात्मना चक्षुरिव प्रविष्टा ॥

उस एकमात्र दर्शनीय शङ्कर को—उस एकमात्र तमाशे को—स्त्रियां अपनी आंखों से पीने सी लगीं। सुनने और स्पर्श करने आदि दूसरे विषयों की तरफ़ से उनकी शेष इन्द्रियां एकसाथही खिंच

आईं और वे सब उनकी आंखों में घुस सी गईं। यह न समझिए कि बाक़ी बची हुई इन्द्रियों का कुछ ही अंश उन स्त्रियों की आंखों में चला गया। नहीं, उनका सर्वांश उनमें प्रवेश कर गया; उन की आत्मा आंखों में घुस गई। अर्थात् जब कान नाक और त्वक् आदि ने देखा कि उनके लिए कोई काम ही नहीं रहा, तब अपनी वृत्ति को छोड़ कर उन्होंने आंखों के भीतर अपना स्थान कर लिया और वे भी आंखों का काम करने लगीं। अर्थात् वे भी शङ्कर को देखने में लीन हो गईं। जब किसीका व्यवसाय मारा जाता है तब वह लाचार होकर जिसका अधिक चलन होता है वही व्यवसाय करने लगता है। ठीक वही दशा हिमालय के नगर में रहनेवाली स्त्रियों की इन्द्रियों की हुई। कैसी अद्भुत उक्ति है!

वधू-वर के रूप में जिस समय उमा और महेश्वर अग्नि की प्रदक्षिणा करने लगे, उस समय कालिदास को एक गहरी वैज्ञानिक उपमा सूझी। आप कहते हैं—

प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुदर्चिषस्तन्मिथुनं चकासे।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यसंसक्तमहस्त्रियामम्॥

एक दूसरे से मिला हुआ, अर्थात् संश्लिष्ट, दिन और रात का जोड़ा मेरु-पर्वत के चारों तरफ़ जिस तरह सुशोभित होता है, उसी तरह बढ़ी हुई लपटवाली आग की प्रदक्षिणा करते समय उमा और महेश्वर का जोड़ा शोभायमान हुआ। श्रीयुत बालगङ्गाधर तिलक ने अपनी वेद-विषयक नई पुस्तक में लिखा है कि मेरु-प्रदेश से प्राचीन आर्य्यों का मतलब उत्तरी ध्रुव के आस पास के देश से था। क्योंकि वहाँ दिन और रात एक दूसरे से लिपटे हुए मालूम होते हैं। जान पड़ता है यह सिद्धान्त हमारे महाकवि को पहले ही से विदित था। यदि विदित न होता तो ऐसे वैज्ञानिक तत्व से भरी हुई उपमा आप किस तरह दे सकते? कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि पृथ्वी का घूमना और मेरु के पास दिन और रात का परस्पर संलग्न होना कालिदास को अवश्य मालूम था।

जब और सब वैवाहिक आचार हो चुके, तब विवाहमण्डप के नीचे ही सब के समक्ष, कालिदास ने पार्वती को बोलने के लिए लाचार किया। इस विषय का यह अन्तिम श्लोक सुनिए—

ध्रुवेण भर्त्रा ध्रुवदर्शनाय प्रयुज्यमाना प्रियदर्शनेन।
सा दृष्ट इत्याननमुन्नमय्य ह्रीसन्नकण्ठी कथमप्युवाच॥

ध्रुव तारा अचल माना जाता है। अतएव यह सूचित करने के लिए कि हमारा-तुम्हारा विवाह सम्बन्ध उसीकी तरह अचल हो, प्रियदर्शन पति ने पार्वती से कहा कि अब तुम ज़रा ध्रुव को देख लो। यह सुनकर पार्वती ने अपना मुँह ज़रा ऊपर की तरफ़ किया और लज्जा के कारण बहुत धीमे स्वर में किसी तरह यह कहा कि "देख लिया"। यहां पर "दृष्टः" अर्थात् "देख लिया" यह पद इस श्लोक की आत्मा है। यही इसका जीव है। इससे और इसके पहले के और भी कई कुमारसम्भव के श्लोकों से यह जान पड़ता है कि कालिदास के ज़माने में उपवर होने ही पर कन्याओं का विवाह होता था; और विवाह-पद्धति, किम्वा गृह्य सूत्रों, में कहे गये वचनों के मतलब और महत्व को वे अच्छी तरह समझती थीं। यही नहीं, किन्तु आवश्यकता पड़ने पर विवाह-मण्डप में सबके सामने वे बोलती भी थीं।

भूकम्प।*

[पिता-पुत्र-सम्वाद]

पिता—बेटा, तुम यह क्या देख रहे हो?

पुत्र—बाबा, यह एक चित्र है। भैया की मेज़ पर रक्खी हुई एक पुस्तक में से मैं इसे निकाल लाया हूं। टूटे हुए मकानों के समान, बाबा, ये क्या हैं?

* चार्ल्स किंग्सले के लेख के आधार पर लिखित।

पि०—बेटा, ये एक पुराने नगर के खँडहर हैं। किसी समय यह नगर भी प्रयाग इत्यादि नगरों के समान था; और इसमें लाखों नर नारी निवास करते थे। पर अब यहां उलूकों और चिमगादरों के सिवा कोई नहीं रहता।

पु०—तो, बाबा, यहां के रहनेवाले यहां से क्यों चले गये?

पि०—बेटा, वे कहीं चले नहीं गये; नगर के गिरने से सब यहां ही दबकर मर गये।

पु०—यह तो बड़ी दुःखदायी बात है। हाय! उन बेचारों की क्या दशा हुई होगी? क्यों, बाबा, तो क्या छोटे छोटे बालक भी दबकर मर गये होंगे?

पि०—हां, बेटा, जब सभी मर गये तब बालक कैसे बच सकते थे?

पु०—भला, बाबा, भगवान ने ऐसी निर्दयता का काम क्यों किया?

पि०—मेरे प्यारे बेटे, मैं इस प्रश्न का उत्तर कैसे दूं? पर क्या तुमने इस प्रश्न के करने में कुछ अपराध किया? नहीं, बेटा, नहीं। तुम भी तो मनुष्य हो; इसलिए तुम यह पूछते हो। सहानुभूति और दया मनुष्य के स्वभाव के अङ्ग हैं। अतएव इस प्रकार की घटना का कारण पूछना तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल है। किसी घटना को देख कर ही तुम्हें सन्तुष्ट न होना चाहिए; किन्तु तुम्हें जानना चाहिए कि, ऐसा क्यों हुआ? तुमने यह प्रश्न करके उचितकार्य किया। इसके उत्तर में मैं यही कहूंगा कि, इसमें परमेश्वर का कुछ दोष नहीं है। ऐसी घटना होनेवाली थी, इससे हुई।

पु०—पर, बाबा, आप कहते थे कि ईश्वर सर्वज्ञ है; अर्थात् भूत भविष्यत् और वर्तमान काल में होनेवाली सब घटनाओं को वह जानता है। तो उसे इस घटना का होना भी पहले ही मालूम हो चुका होगा। फिर उसने बेचारे निरपराध आदमियों को पहले ही से सावधान करके अपनी दयालुता का परिचय क्यों न दिया?

पि०—यह तुम्हारी शङ्का न्याय-युक्त है। पर यदि तुम उस समय उस नगर में निवास करते होते तो तुम्हें जान पड़ता कि, ईश्वर ने उस होनेवाली दुर्घटना की सूचना आदमियों को पहले ही दे दी थी। पर उन्होंने उस पर ध्यान न दिया। इसीसे उनका सर्वनाश हुआ।

पु०—बाबा, मेरी समझ में नहीं आता कि ईश्वर किस प्रकार होनेवाली घटनाओं की सूचना दिया करता है। क्या उस समय कोई आकाशवाणी हुई होगी?

पि०—बेटा, तुम्हारे 'क्यों,' 'क्या' और 'कैसे' के मारे तो कभी कभी मुझे घबरा जाना पड़ता है। तुम पूछते हो, भगवान सूचना किस प्रकार देता है? ठीक है, मान लो कि यदि इस मकान का मालिक उसकी छत तोड़ कर उसे हमारे ऊपर डालना चाहे, या मकान के नीचे बारूद सुलगाके मकान के साथ साथ हमें भी उड़ा देना चाहे, पर इस विषय में हमसे वह एक शब्द भी न कहे, तोभी क्या उसकी इस बुरी इच्छा को हम न जान सकेंगे?

पु०—यह तो हम अवश्य जान लेंगे। उसके इस कार्य से तो हमें स्पष्ट मालूम हो जायगा कि, वह हमको इस मकान में नहीं रहने देना चाहता।

पि०—भला तो क्या तुम बता सकते हो कि ऐसी दशा में हमको क्या करना चाहिये?

पु०—हां। यह मैं कह सकता हूं कि उसके ऐसा करने के पहले ही हमको घर छोड़ कर और कहीं चले जाना चाहिये।

पि०—फिर उस नगर के निवासियों ने ऐसा क्यों नहीं किया? यदि वे ऐसा करते तो क्यों उन का सर्वनाश हो जाता?

पु०—पर आपने यह तो बतलाया ही नहीं कि, इस होनहार घटना की सूचना उनको कैसे मिलती।

पि०—तुमने यह कैसे जाना कि मकान का मालिक तुम्हें उसमें नहीं रहने देनाही चाहता?

पु०—उसके कार्यारम्भ से।

पि०—बेटा, इसी प्रकार इस बड़े मकान के मालिक उस जगदीश्वर की सूचना हमें छोटी छोटी प्रारम्भिक घटनाओं में देखना चाहिये। उस दिन लार्ड बेकन के निबन्ध में तुमने क्या पढ़ा था? स्मरण है? "परमेश्वर की इच्छा घटनाओं के द्वारा जानी जाती है"। ऐसी घटनाओं की पहले ही से सूचना देनेवाले यन्त्र तक विद्वानों ने बना डाले हैं।

पु०—हां। ठीक है। यह तो मैं समझ गया। किन्तु, बाबा, कृपा करके यह बताइये कि वह कौन सी दुर्घटना थी कि जिसने ऐसे बड़े शहर को नष्ट कर दिया।

पि०—बेटा, इस घटना को भूकम्प कहते हैं।

पु०—भूकम्प? वह क्या चीज़ है?

पि०—चीज़ नहीं, किन्तु वह एक घटना है। भू अर्थात् भूमि के हिलने को भूकम्प कहते हैं।

पु०—अब मैं समझ गया। अम्मा कहती थीं कि यह पृथ्वी शेषनाग के मस्तक पर रक्खी हुई है। जब हम लोग पाप अधिक करते हैं तब पृथ्वी का वज़न भी अधिक हो जाता है। इस अधिक बोझ सहने में असमर्थ होकर शेषनाग अपना सिर हिला देते हैं, इसीसे पृथ्वी कंपायमान होती है और उसके द्वारा प्रजा को अपने पाप का प्रायश्चित्त मिल जाता है।

पि०—तुम्हारी अम्मा की यह अटकल हमारी समझ में नहीं आती। हमारे विचार से तो इसका कारण दूसरा ही है।

पु०—आप इसका क्या कारण समझते हैं?

पि०—पहले हमको इसका एक छोटा सा कारण ढूंढ़ना होगा। उसीसे सब समझ में आ जायगा। यही रीति उत्तम और सरल है। तुम्हें जानना चाहिये कि भूकम्प के समान भयङ्कर घटना का करनेवाला भी कोई बड़ा बलवान और भयङ्कर पदार्थ होगा। भला संसार में सबसे अधिक बलवान और भयङ्कर वस्तु क्या है?

पु०—शेषनाग।

पि०—वाह! क्या ख़ूब! तुमने उसे कहां और कब देखा? जिसे तुमने देखा हो उसे बतलाओ।

पु०—बारूद।

पि०—ठीक है। पर बारूद कभी कभी बलवान और भयङ्कर होती है; सदैव नहीं। तुम चाहो तो उसे किसी बरतन में, या अपने हाथ में, ले जा सकते हो। इस दशा में वह बिलकुल बलहीन होती है। उसे गैस, या भाप के रूप में लाने ही से वह महाबलवान हो जाती है। किन्तु भाप सब कहीं और सब दशाओं में बलवान होती है। यदि तुम रेल के एंजिन की तरफ़ या, ख़ास करके, भाप के ज़ोर से फूटते हुए एञ्जिन (जिसे देखने से ईश्वर बचावे) की तरफ़ देखो तो, तुम भी मेरे इस विचार से सहमत होगे कि, संसार में सब से बलवान वस्तु भाप है। इसी भाप की शक्ति के द्वारा तुम भूकम्प के बारे में सब नहीं तो बहुत कुछ जान सकते हो। पहले तुम्हें विश्वास करना होगा कि ये भूकम्प भाप या दूसरी प्रकार के गैसों के ज़ोर से और बहुत जल्द फैल जाने से होते हैं। अब ....।

पु०—(बात काट कर) पर आपने यह न बताया कि, इनका फैलानेवाला कौन है?

पि०—फिर तुम्हारा 'कौन' आया! तुम जानते हो कि संसार में सब वस्तुओं को फैलानेवाली शक्ति उष्णता, अर्थात् गर्मी, है। यही उष्णता इस भाप और इन गैसों को फैलाती है। उस रोज़ सरस्वती में तुमने नहीं पढ़ा कि भूगर्भ में उष्णता बहुत रहती है। इसीसे पदार्थ फैलते हैं और ज्वालामुखी पर्वतों का स्फोट होता है। पर इस बात से यहां कुछ मतलब नहीं है। अब तुम यह बतलाओ कि चाय बनाते समय देगची का ढकन क्यों हिलता है?

पु०—देगची के भीतर फैलती हुई भाप ढकन के किनारे से बाहर निकलती है। इसीसे ढकनकम्प होता है। यह तो आपने एक दफ़ा समझा दिया था।

पि०—अब मान लो कि भूगर्भ में भाप है और वह बाहर निकलने का प्रयत्न करती है। जिस प्रकार देगची का ढकन मज़बूत होने पर भी हिल सकता है, उसी प्रकार पृथ्वी का कोई कोई भाग सख्त हो कर भी कच्चा रह गया है। इससे वह हिल सकता है। उसमें दरारें हो गई हैं। वे दरारें वैसी ही हैं जैसी कि हम देगची और उसके ढकन के बीच में देखते हैं। इन दरारों के द्वारा पृथ्वी से बाहर निकलती हुई भाप भूमि के धरातल को हिला सकती है। इसीसे भूकम्प होता है। इस प्रकार भाप के द्वारा जो भूकम्प हुआ करते हैं उनका कुछ प्रभाव नहीं होता। एक दिल्लगीबाज़ कहा करते थे कि ऐसे भूकम्पों को हम किशोर या कुमार भूकम्प कह सकते हैं और यदि चाहें तो हम उन्हें प्यार भी कर सकते हैं। एक दफ़ा एक पहाड़ पर सैर करते समय मुझे भी एक ऐसे भूकम्प का सामना करना पड़ा था। पहले तो मैं हँसा था; पर अन्त में उसने मेरे मन में गम्भीर भाव पैदा कर दिये थे।

पु०—बाबा, तो क्या हमें उसका हाल न सुनाओगे?

पि०—अच्छा तुम्हारी इच्छा है तो लो सुनो।

एक दफ़ा काश्मीर के उत्तर की पर्वत-मालाओं में भ्रमण करता हुआ मैं एक मनोहर स्थल पर पहुंचा। इस स्थान के निकट ही पर्वत में एक कन्दरा थी। वह इतनी छोटी थी कि उसके भीतर किसी चीज़ के रखने के लिये जगह न थी। उस दर्रे के दोनों तरफ़ चिकनी चट्टानों की दीवारों के बीच में, जल का एक प्रवाह, मन्द मन्द शब्द करता हुआ बह रहा था। इसी प्रवाह के कुछ ऊपर पर्वत की श्रेणियों में से होता हुआ एक मार्ग था। इसके ऊपर भी कई ऊंची ऊंची पर्वत-श्रेणियां थीं। इन श्रेणियों में सिर से कई हाथ ऊपर चट्टानों की गुफायें थीं। उनके काले काले दीर्घाकार मुख भयङ्कर जान पड़ते थे। इन मुखों में से शतशः जल की धारायें मार्ग को जहां तहां काटते हुई नीचे के प्रवाह में गिरती थीं। उनके गिरने से बर्फ सदृश फेन के बड़े बड़े पर्वत उस प्रवाह में बह रहे थे। शब्द भी बड़ा भयङ्कर होता था। कुछ दूर पर इन पर्वत-श्रेणियों से भी ऊंचे पर्वतों के समूह थे, जिन पर के वृक्ष, वसन्त की मनोहर वायु में, ख़ूब सुगन्ध फैलाते थे। इन वृक्षों तथा टूटी हुई चट्टानों के बीच में कहीं कहीं लाल, नीले और सफ़ेद फूलों से लदे हुए वृक्ष थे। वे बहुत ही शोभायमान थे। इन्हींके बीच में कहीं कहीं पर दीर्घाकार पहाड़ी वृक्ष भी उगे हुए थे, जिनकी टहनियों से पर्वत-श्रेणियां और दर्रे ढक गये थे। उन वृक्षों की चोटियां संध्या के लाल लाल आकाश का आलिङ्गन सा कर रही थीं। इनके पीछे बर्फ़ के टीले थे जो कई मील दूर हो कर भी ऐसे जान पड़ते थे मानो हम उन्हें अपने हाथ से छू सकते हैं। धरातल से आठ हज़ार फ़ुट ऊंचे, बर्फ़ के समान श्वेत और तेजोवान् पर्वत खड़े थे। मैं उनके सुन्दर सफ़ेद कँगूरों को सन्ध्याकाल के सूर्य की किरणों से गुलाबी होने तक देखता रहा। जब सूर्यास्त हो चुका तब उन्होंने अन्धकार के भूरे रङ्ग में ग़ोता लगाया। किन्तु चन्द्रमा के निकलते ही वे फिर चमकने लगे। उनकी शोभा को देखते देखते जब मैं थक गया तब वहां से मैं लौटा। जिस स्थान पर मैं ठहरा था वह मार्ग के निकट, जल प्रवाह के ऊपर, था। वहां साधुओं की कुछ कुटियां भी थीं। इन्हींमें से एक कुटी में मैं ठहर गया था। उस दिन मैं इतना थक गया था कि जाकर अपने बिस्तर पर लेट रहा और मुझे नींद आ गई। मैंने नींद में एक ऐसा स्वप्न देखा जैसा तुमने कभी न देखा होगा। कोई विकट स्वप्न देखने के लिये मनस्तरङ्गों में किसी शब्द-विशेष या चञ्चलता के प्रवेश की आवश्यकता होती है। और अपनी समझ में जिस स्वप्न को तुम सारी रात देखते रहे वह एक सेकण्ड तक भी नहीं रहता। और जिस कारण-विशेष से स्वप्न पैदा होता है उसी से उसका अन्त भी होता है। इसी अवकाश में तुम सारा स्वप्न देख लेते हो और मन कहीं का कहीं भ्रमण कर आता है। उस समय मेरी भी यही दशा

थी। मुझे जान पड़ा कि जिस कुटी में मैं ठहरा हुआ हूं उसीमें कई साधु आकर ठहरे और मेरे पास ही सो गये। वे आपस में किसी विषय पर वादानुवाद करने और उसी पर झगड़ने लगे। उनकी लड़ाई यहां तक बढ़ी कि वहां की वस्तुओं का नाश होने लगा। मैंने सोचा कि उठकर उनका झगड़ा बन्द कर देना चाहिये। ज्योंही मेरी आंख खुली, मैं क्या देखता हूँ कि, न तो कोई साधु है और न कोई झगड़ा; किन्तु उत्तर की तरफ़ के दर्रे से एक ऐसा शब्द आ रहा है जैसा न मैंने पहले कभी सुना था और न उसके बाद आज तक सुना। मुझे जान पड़ा, मानों ज़मीन के नीचे से सैकड़ों रेल गाड़ियां जा रही हैं। ज्योंही यह शब्द मेरे बिस्तर के पास से होता हुआ गया त्योंही मुझे एक भयङ्कर धक्का लगा। मैं बड़ी फुर्ती से उठ कर खड़ा हो गया। थोड़ी देर में वह शब्द भी दूर दूर तक जाता हुआ जान पड़ा और शीघ्र ही वह बन्द हो गया। इतना तो हुआ पर साधुओं के झगड़े की बात मेरे ध्यान से अलग न हुई। आँखें मलने पर मुझे स्मरण हुआ कि यहां कोई साधु इत्यादि नहीं आये थे। मैं उस कुटी में अकेला ही था। मैंने कुटी का दरवाज़ा खोला। तब एक साधु 'सीताराम सीताराम' करता हुआ सुनाई दिया। कुत्तों का भूकना इत्यादि भी मुझे सुन पड़ा। अन्त में सब शान्त हो गया। केवल जलप्रपात का शब्द सुनाई देता रहा। विचार करने से सब बात मेरी समझ में आ गई। मैं हँसने लगा; और यह कह कर कि, यह केवल भूकम्प था, फिर मैं सो गया। प्रातःकाल मैंने पास की कुटी के साधुओं से पूछा कि क्या तुम्हें भी कोई शब्द रात को सुनाई दिया था? किन्तु सबने कहा 'नहीं'। जब मैंने अपने कुली से वही बात पूछी तब उसने भी ठीक उत्तर न दिया। अन्त में एक बालक से पूछने पर उसने कहा—"कुछ नहीं, यह तो भूकम्प था। डेढ़ महीने में एक बार यहां भूकम्प हुआ करता है"। यह सुन कर मुझे आश्चर्य और सन्तोष दोनों हुए। उसने सरलता के कारण मुझे भेद बता दिया। पर साधुओं और कुली ने इस कारण उसे न बताया कि भेद खुल जाने से वहां कोई न जायगा।

पु०—बाबा, उस स्थान का नाम क्या था?

पि०—नाम बतलाने से उन साधुओं को हानि पहुंचने की सम्भावना है। इससे मैं तुम्हें उसका नाम न बतलाऊंगा। अस्तु। इतने पर मुझे तुम्हारे 'कैसे' की याद आ गई। मैंने सोचा कि, उस स्थल में भूकम्प कैसे हो सकता था? वहां तो पास कोई ज्वालामुखी भी नहीं था। दर्रे के ऊपर चढ़ते समय मैंने देखा था कि पर्वत-श्रेणियां भूरे चूने के पत्थर की बनी हैं; किन्तु इस स्थान पर वे ग्रेनाइट (Granite) अर्थात् कड़े पत्थर की हैं। मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि चूने के पत्थर का ग्रेनाइट बन गया था; किन्तु दर्रे के धरातल से ग्रेनाइट ऊपर उठा हुआ था और साथ ही चूने के पत्थर को अपने साथ वायुमण्डल में सैकड़ों फ़ुट ऊंचा ले आया था। जिन कन्दराओं के मुख से पानी गिर रहा था वे एक ही सीध में ग्रेनाइट की चोटी पर, चूने के पत्थर के नीचे, थीं। और ऐसा ही होना भी चाहिए। क्योंकि, पानी चूने में कन्दरायें बना सकता है, पर ग्रेनाइट में नहीं। वहां पर ठण्ढे झरनों के सिवा मेरी कुटी के नीचे की तरफ़ गरम पानी के भी झरने थे जिन में कई प्रकार के रासायनिक नमक मिले हुए थे। जब मैं फिर उन्हें देखने गया तब मुझे मालूम हुआ कि उनका उद्गम ग्रेनाइट और चूने के ठीक बीचवाली चट्टानों में था। मैंने कहा—"अहा! अब मैं समझा, संसार में सबसे बड़ी देगची (पृथ्वी) का ढक्कन (धरातल) यहां पर कच्चा है और हिल रहा है। क्योंकि ग्रेनाइट ने चूने के पत्थर को ऊपर उठाते समय उसे ढीला कर दिया है। और यह गरम पानी उसकी कन्दरा से निकल रहा है। उस के पानी की भाप बाहर निकलने का प्रयत्न करती है। इसीसे, ऊपर, चूने की कच्ची और पोली सतह कम्पायमान होती है। रात को जो शब्द सुनाई

दिया था वह इसो भूकम्प का था"। इतना सोचते ही मेरा भाव गँभीर हो गया और मैंने सोचा "यदि भाप की शक्ति ज़रा और अधिक होती, या ऊपर की चूने की सतह ज़रा अधिक कच्ची होती तो लोगों को हँसी करने की जगह रहती। उस दशा में सब कुटियां ज़मीन में मिल जातीं; चटानें जल-प्रवाह में जा गिरतीं; चारों तरफ़ गरम पानी के प्रवाह बह निकलते; ज़हरीली वायु हवा में फैल जाती; सैकड़ों स्थानों में भूगर्भ की भाप के बलवान होने से, और ऊपर की भूमि के कच्चे होने से, जो अनर्थ अनेक बार हुए हैं और होते जाते हैं, वही अनर्थ आज यहां भी हो जाता"। इतना सोचते ही मुझे निश्चय हो गया कि, कुमार या किशोर भूकम्पों की भी हँसो न करना चाहिए।

पु०—ओः! बाबा, क्या इस साधारण भाप में इतना बल होता है?

पि०—हां, बेटा। इस भाप को तुम साधारण मत समझो। मनुष्य अपनी बुद्धि के द्वारा कैसे कैसे काम इससे ले रहा है सो तुम जानते ही हो। भूगर्भ के भीतर की भाप के काम बड़े ही विचित्र और भयङ्कर होते हैं। जिस भूमि को हम इतनी दृढ़ और स्थिर समझते हैं उसीको वह जल की तरङ्गों के समान आगे पोछे हटा सकती है। तब हमें जान पड़ता है कि हम जहाज़ पर बैठे हैं। उस समय मन्दिरों में घण्टा-नाद होने लगता है; ऊपर का सामान नीचे गिरने लगता है; सामुद्रिक बीमारियां फैलती हैं; वृक्ष हिलने लगते हैं; द्वार भयङ्कर शब्द के साथ खुलने और बन्द होने लगते हैं; मकान तक हिल जाते हैं; और मनुष्य डर जाते हैं। यह तो केवल उसकी शक्ति के होने की सूचना-मात्र है। जब ज़ोर से भूकम्प होता है तब मकान और मन्दिर गिर कर खँडहर बन जाते हैं। तुम्हारे हाथ में जो यह चित्र है उससे तुम अनुमान कर सकते हो कि, भूकम्प के द्वारा नष्ट हुए नगरों की क्या दशा होती है। ऐसे भूकम्पों के बाद आनेवाली आपत्तियों का वर्णन करके मैं तुम्हारे कोमल हृदय को न दुखाऊंगा; किन्तु इन भूकम्पों के कई काम ऐसे विलक्षण होते हैं जो बड़े बड़े विद्वान् भी नहीं समझ सकते।

कभी कभी इनका वेग वर्तुलाकार भी हुआ करता है। उस समय पृथ्वी चक्कर खाने लगती है; मानो किसी जलाशय में पानी घूम रहा हो। वृक्षों की सीधी क़तारें टेढ़ी हो जाती हैं; दीवारें गोल हो जाती हैं; और खम्भों के पत्थर सरक जाते हैं; नदियों की दिशायें पलट जाती हैं; जल की जगह स्थल और स्थल की जगह जल हो जाता है।

पु०—हा भगवान! उस समय आदमियों की क्या दशा होती होगी?

पि०—यह न पूछो। एक मनुष्य ने ऐसा भूकम्प देखा है। उसका कथन है कि, उस समय एक घर की सब चीज़ें, निकट के मकान के नीचे जाकर, दब गईं। बहुत सी चीज़ें सैकड़ों गज़ की दूरी पर जाकर गिरीं और उनके मालिकों का उन पर स्वत्व निश्चय करने के लिए न्यायालय की शरण लेनी पड़ी।

कभी कभी भूकम्प के धक्के गोल नहीं होते। वे भूमि से ऊपर की तरफ़ सीधे लम्बरूप में लगते हैं। उस समय माल असबाब और आदमी धक्के के ज़ोर से ऊपर आकाश की तरफ़ उछल जाते हैं। इसी प्रकार कभी कभी बड़ी बड़ी चट्टानें पहाड़ों पर से गिरकर नीचे दर्रों, या नगरों, में आकर गिरती हैं और शहर के शहर नष्ट कर डालती हैं। भूकम्प का धक्का पर्वत के गर्भ में भ्रमण करता हुआ चोटी पर पहुंचता है। और यदि चोटी कच्ची हो तो उसे उठाकर फेंक देता है; यदि तुम पत्थर की गोलियां एक क़तार में रखकर निकट की गोली को उँगली से हलका सा धक्का दो तो दूसरे छोर की गोली दूर हट जाती है। पर और गोलियां अपनी जगह पर स्थिर रहती हैं। धक्का प्रत्येक गोली पर लगता है; पर प्रत्येक गोली अपने निकट की गोली को धक्का देकर रह जाती है। अन्त की गोली को कोई रुकावट न होने से वह



कांगड़ा का मन्दिर—भूकम्प के बाद।



देवसमाज के कई समाजी भूकम्प से ज़ख़मी एक मनुष्य
के मरहम पट्टी बांध रहे हैं। उसकी स्त्रियां
पास बैठी रो रही हैं।

अलग हो जाती है। इन गोलियों के उदाहरण से तुम चट्टानों के फेंके जाने का कारण जान सकते हो।

पु०—बाबा, फिर तो हमें पहाड़ी देश छोड़कर समुद्र के किनारे के देशों में चलकर रहना चाहिये।

पि०—नहीं, बेटा। वहां भी हम इस आपत्ति से नहीं बच सकते। भूकम्प के समय समुद्र की लहरें पृथ्वी के धरातल पर फैलकर उसे जलमय कर देती हैं। पहले तो समुद्र में शब्द होने लगता है और जल पीछे की तरफ़ हटता है। बाद में जल की एक बड़ी ऊंची दीवार सी आती है। हमारे घरों से भी ऊंची वह लहर ज़मीन पर फैल जाती है और नगरों को जलमय करके उन्हें तोड़ती फोड़ती लौट जाती है।

पु०—पर इसका भी कोई कारण होगा?

पि०—ज़रूर। बिना कारण के तो कोई कार्य्य हो नहीं होता। इसके कई कारण हैं, पर मैं दो कारण ऐसे बताता हूं जिन्हें तुम सहज ही में समझ सकोगे।

तुम जानते हो कि समुद्र के नीचे भी पहाड़ हैं। भूकम्प का धक्का ज़मीन के पेट में भ्रमण करता हुआ समुद्र के नीचे तक चला जाता है। तब वहां की ज़मीन लहरों के समान चलायमान होकर ऊपर नीचे उठने बैठने लगती है। मान लो कि धरातल की ज़मीन नीचे की ओर धँस गई। तो उसके साथ समुद्र का जल भी नीचे उतरने लगेगा और किनारे को सूखा छोड़ जायगा। थोड़ी देर में धरातल के ऊपर उठने से समुद्र का जल भी ऊपर उठकर किनारे से टकराने लगेगा। यही कारण है कि स्थल पर भूकम्प का धक्का न बैठने पर भी समुद्र का जल उस स्थान को नष्ट कर देता है। और यह बात सत्य है कि भूकम्प के समय समुद्रतल की भूमि चलायमान हो जाती है और समुद्र का जल बड़े वेग से बहने लगता है। क्योंकि, उस समय जहाज़ों पर बड़े बड़े धक्के बैठते हैं और मल्लाहों को भय होता है कि जहाज़ किसी चट्टान से टकरा तो न गया। इन धक्कों में इतना बल होता है कि वे समुद्र का लाखों मन पानी उठा कर किनारे पर फेंक देते हैं। किन्तु जहाज़ों के भारी होने से उन्हें कुछ हानि नहीं होती। यदि धक्का भारी हो तो वह जहाज़ को उठाकर उसी प्रकार फेंक सकता है जैसे कि वह चट्टानों को फेंक देता है। इन्हीं सामुद्रिक भूकम्पों से समुद्रों की गहराइयों में अन्तर हो जाता है। समुद्र से फेंका हुआ जल दीवार के समान आकर किनारे को नष्ट कर देता है। यह एक कारण हुआ। अब दूसरा सुनो।

एक बर्तन में पानी भर कर उसमें रबर का पोला गेंद डुबा दो। फिर रबर की एक नली के द्वारा उस गेंद में हवा भरना शुरू करो। ज्यों ज्यों तुम हवा भरते जाओगे त्यों त्यों गेंद फूलकर पानी के धरातल के ऊपर उठता जायगा और उसका एक भाग ऊपर दिखाई देने लगेगा। उस गेंद पर कुछ चीटियां छोड़ दो। ये चीटियां गेंद को एक बहुत बड़ा द्वीप या पूरा भूमण्डल ही समझती हैं। भला ये छोटे छोटे जन्तु हवा भरने से गेंद के फूलने और बड़े होने का क्या अनुमान कर सकते हैं? वे यह नहीं जानते कि, हवा भरने से गेंद फूलकर पानी के ऊपर उठ रहा है। उन्हें केवल गेंद का ऊपर उठना अथवा पानी का हटना भर दिखाई देता है। जिस बर्तन में गेंद रक्खा है उसका कोई हिस्सा यदि उन्हें दिखाई दे, और इस बात का निश्चय हो जाय कि वह स्थिर है, तो चीटियां यही समझेंगी कि वे ऊपर उठ रही हैं, अर्थात् वह गेंदरूपी उन की पृथ्वी ऊपर उठ रही है। पर इन चीटियों के नेत्र इतने छोटे हैं कि वे बर्तन के किसी हिस्से को नहीं देख सकतीं। उनकी दशा उन मनुष्यों के समान है जो एक द्वीप में रहते हैं और दूसरे द्वीप को नहीं देख सकते। ऐसी दशा में उनका अनुमान झूठ होगा। वे नहीं बता सकेंगी कि वास्तव में वे ऊपर उठ रही हैं या पानी नीचे की तरफ़ जा रहा है। अर्थात् गेंद ऊपर उठ रहा है या पानी नीचे जा रहा है। कदाचित् वे यही

समझेंगीं कि पानी नीचे उतर रहा है और गेंद को सूखा छोड़ता जाता है। अब तुम उस गेंद में एक छेद करदो। ऐसा करते ही उसमें की हवा बाहर निकलने लगेगी और गेंद फिर जल में डूबने लगेगा। किन्तु वे चोंटियां इसका उलटा अनुमान करेंगी। उन्हें यह ख़याल होगा कि यह गेंद दृढ़ और स्थिर है। अतएव वे यही समझेंगी कि जलही ऊपर चढ़ रहा है।

इस उदाहरण से तुम सब बात समझ गये होगे। हमारी पृथ्वी के गर्भ में भी तो गेंद के समान कई प्रकार की हवा और भाप भरी है। पृथ्वी के चारों तरफ़ समुद्र है। भूकम्प के समय गरमी से यह भाप फैलने लगती है। इस कारण पृथ्वी भी फूलने लगती है। हम छोटी आंखों के मनुष्य पृथ्वी के इस फूलने को नहीं देख सकते। न हमें उसको देखने के लिये दूसरा कोई स्थल ही है। हमारी दशा भी उन चींटियों के समान पृथ्वी ही ऊपर उठ रही है। तुम जानते हो कि पृथ्वी में दरारें होती हैं। और भाप के बल से वहां की भूमि फट जाती है। फटी जगह से भाप बाहर निकलने लगती है। भाप के बाहर निकलते ही पृथ्वी सिकुड़ती है। उस समय हमें जान पड़ता है कि समुद्र का जल उमड़ा चला आरहा है। पर वास्तव में हमारी भूमि ही नीचे धँसती है। यदि उस समय अधिक भाप बाहर निकल आवे तो प्रलय ही हो जाय।

पु०—बस, बाबा; अब मैं इन भूकम्पों का वर्णन अधिक नहीं सुनना चाहता। मैं तो समझता हूं कि भूकम्प दैवी आपत्तियों का सरदार है। किन्तु एक बात मैं आप से पूछता हूं। भारत में भूकम्प अधिक क्यों नहीं होते?

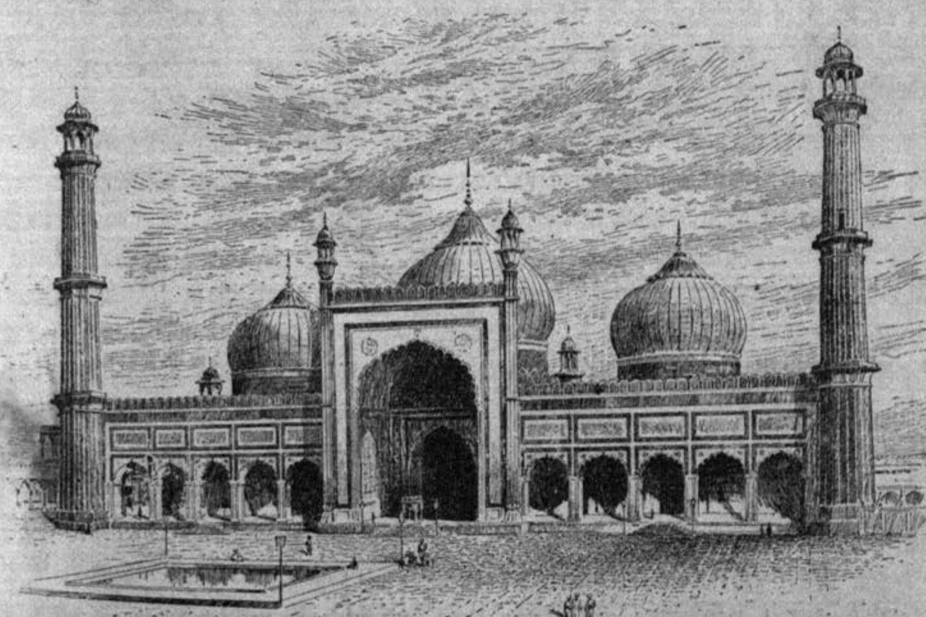
पि०—इसको प्रभु की कृपा समझना चाहिये कि यहां के कुछ भागों को छोड़ कर अधिकांश में भूकम्प नहीं होते और होते भी हैं तो वही



शिमला—लाट साहब का महल।

है। इससे हम अनुमान करते हैं कि समुद्र का जल नीचे हट रहा है; किन्तु वास्तव में हमारी भूकम्पों के बच्चे। पर हाल में ता० ४ एप्रिल को प्रातःकाल ६ बजे इस देश में एक भयङ्कर भूकम्प

हुआ। उससे इस देश की अनन्त हानि हुई। इस कम्प का वेग दूर तक नहीं गया; यदि दूर तक जाता तो शायद प्रलय ही हो जाती। इस भूकम्प ने धर्म्मशाला काँगड़ा और पालमपुर को समूल उद्ध्वस्त कर दिया। सारे मकान, मन्दिर, बाज़ार और बारकें आदि इमारतें गिर कर ईंट, पत्थर, का ढेर होगईं। हज़ारों नर नारी दब कर मर गये। करोड़ों रुपये की सम्पत्ति नष्ट होगई। सबसे भयङ्कर धक्का धर्मशाला नाम की छावनी को लगा। उससे शहर बिलकुलही बरबाद हो गया और छावनी भी प्रायः नष्ट होगई। कोई ४०० गोरखों की जान गई। अनेक योरोपियन अफ़सर भी मरे और घायल हुए। कई मेमों की भी जानें गईं। शिमला, लाहौर, मंसूरी, देहली और डलहौसी में भी बहुत हानि हुई। बड़े बड़े मकान, मसजिदें और मक़बरों का भङ्ग भङ्ग होगया। कितनी ही इमारतें



देहली—जामेमसजिद।

बिलकुल ही चूर होगईं। यहां भी बहुत नर-नाश हुआ। यह धक्का कांगरा की पहाड़ी तराई में एक छोर से दूसरी छोर तक बहुत बड़े वेग से लगा। धर्मशाला, ज्वालामुखी और काँगड़ा में इसका वेग और जगहों की अपेक्षा बहुत अधिक था। सैकड़ों गाँव बरबाद होगये और हज़ारों आदमी दबकर मर गये। सब मिला कर कोई २० हज़ार आदमियों का नाश हुआ। काँगरा ५००० की बस्ती थी। उसमें से सिर्फ ५०० के क़रीब आदमी बचे। काश्मीर और पञ्जाब के और कई शहरों को भी हानि पहुंची, पर और प्रान्तों में हानि नहीं हुई। धक्का ज़रूर थोड़ा बहुत सब कहीं लगा। इस कम्प की दिशा उत्तर-पूर्व थी। कई जगहों में अनेक धक्के लगे और कई दिन तक बराबर लगते रहे। १८९७ ई० में भी एक ऐसा ही भूकम्प हुआ था। उससे शिलांग शहर की बहुत हानि हुई थी। पर यह धक्का उससे भी भयङ्कर था। यह कम्प ऐसे समय में हुआ जब सब लोग अपने अपने घरों में थे। हमारे राजराजेश्वर तक ने इस भूकम्प से पीड़ित अपनी प्रजा के साथ सहानुभूति दिखलाई।

फ़ांस, अमेरिका, दक्षिणी अफ़रीका और जापान तक ने सहानुभूतिसूचक तार भेजे। इसीसे इसकी भयङ्करता का अनुमान करना चाहिये। इस भूकम्प से पीडित प्रजा की सहायता के लिए खूब चन्दा हो रहा है। इङ्गलैण्ड और जापान से भी चन्दे का रुपया आ रहा है।

एक विज्ञानी का मत है कि इस देश में हिमालय के दक्षिण-प्रान्त की बनावट ऐसी है कि वहां भयङ्कर भूकम्पों का होना बहुत सम्भव है। इस अवसर भारत को ईश्वर इस आपत्ति से बचावे, यही उससे हमारी प्रार्थना है।

माणिक्यचन्द्र जैन।



भूकम्प का मलमा उठानेवाले मज़दूरों को देवसमाज के कर्म्मचारी पैसा बांट रहे हैं।

आत्मा के अमरत्व का वैज्ञानिक प्रमाण।

जितने उपनिषद हैं, जितने वेदान्त या दर्शन शास्त्र के ग्रन्थ हैं, सभी इस बात को पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि आत्मा अमर है। वह कभी नहीं मरता। उसका कभी नाश नहीं होता। उसे आग नहीं जला सकती; उसे पानी नहीं डुबो सकता; उसे शस्त्र नहीं छिन्न कर सकता। जिसे लोग मरना कहते हैं उसके पहले भी वह था; उसके बाद भी वह बना रहेगा। वह अविनाशी है; वह अमर है।

आत्मा-शब्द, संस्कृत में पुल्लिङ्गवाची है। पर हिन्दी में लोगों ने उसे स्त्रीत्व भी दे रक्खा है। पण्डितों का मत तो यह है कि आत्मा न स्त्री है, न पुरुष और न क्लीब। वह इन उपाधियों से अलग है। उसमें इस तरह का कोई चिन्ह नहीं जिससे उसका लिङ्ग-विशेष सूचित हो। अतएव उसे चाहे कोई जिस लिङ्ग से निर्देश करे, उसके आत्मत्व में, उसके आत्मापन में, कोई अन्तर नहीं आता।

आत्मा की अविनाशिता में अनेक पाश्चात्य पण्डितों का भी विश्वास है। वे भी उसे अविनाशी समझते हैं। वे भी उसे अमर मानते हैं। वे भी कहते हैं कि शरीर छूट जाने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। उसका लोप नहीं होता।

अब एक पण्डित ने इस बात का वैज्ञानिक प्रमाण दिया है। इस प्रमाण ने पढ़े लिखे आदमियों को आश्चर्य में डुबो दिया है; इस बात को न मानने-वालों के कान खड़े कर दिये हैं; उनके विचार व जलनिधि में कल्पनाकल्लोलों की उत्तुङ्ग माला उत्पन्न कर दी है। नास्तिक भी आस्तिक हो रहे हैं; विद्वान् भी अपनी भूलें स्वीकार कर रहे हैं; बड़े बड़े ज्ञानी और विज्ञानी भी अपने पुराने ज्ञान को नया कर रहे हैं। क्योंकि, विज्ञान जिस बात को जैसा साबित कर देता है उसमें सन्देह की जगह नहीं रहती। उसकी फल-सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर होती है। अनुमान उसमें प्रवेश नहीं कर सकता। अनुमान को वह अपने पास आने ही नहीं देता। चार और चार मिलकर आठ होना ही चाहिए; आग का स्पर्श होने से तृण को जलना ही चाहिए; जो पदार्थ पानी से अधिक वज़नी है वह उसमें डूबना ही चाहिए। यन्त्र-विद्या भी विज्ञान की ही भित्ति पर अवलम्बित है। इससे जो यन्त्र जिस काम के लिए है उससे वह काम होना ही चाहिए। हां, यदि वह किसी आकस्मिक घटना से बिगड़ जाय तो बात ही दूसरी है। अमेरिका के मासाचसेट सूबे के च्यबोचासी नामक स्थान के पास एक विज्ञानशाला है। उसमें अध्यात्म-विद्या-सम्बन्धी काम होते हैं। अध्यापक यल्मर गेट्स उसके प्रधान अधिकारी हैं। उन्होंने, एक दिन, आत्मा-सम्बन्धी अपने एक आविष्कार से बड़े बड़े विद्वानों को चकित कर दिया।

एक अँगरेज़ी समाचारपत्र लिखता है कि अध्यापक गेट्स ने जो दृश्य दिखलाया वह सच-मुच अजीब था। पर वह था सच। उसके सच होने की परीक्षा जिन लोगों ने की सबने उसे सही पाया। इस दृश्य को—इस तमाशे को—चाहे कोई माया कहे, चाहे छल कहे, चाहे भ्रान्ति कहे, चाहे स्वप्न कहे,—चाहे जो कुछ कहे,—पर यह निर्भ्रान्त है कि कोई ऐसी चीज़ ज़रूर देख पड़ी जो काल्पनिक न थी; जिसके अस्तित्व का प्रमाण ऐसे लोग हैं जिन्होंने उसे देखा है और जिनकी प्रामाणिकता में ज़रा भी सन्देह नहीं है। वह किसी ऐसी वैसी युक्ति से नहीं देख पड़ी। गणितशास्त्र की सहायता से गणितशास्त्र के योग से वह दृग्गोचर हुई। और गणित-विद्या के सच होने में तिल भर भी शङ्का नहीं। गणितशास्त्र के सिद्धान्तों को झूठ बोलने की आदत नहीं। उनकी सत्यप्रियता विश्व-विख्यात है।

अध्यापक गेट्स एक प्रकार की हलकी किरणों से जाँच कर रहे हैं। यह जाँच आत्मा से सम्बन्ध रखती है। इसे वे बहुत दिनों से कर रहे हैं। इन किरणों का रङ्ग कुछ कालापन लिए हुए लाल है। ये कुछ कुछ बनफ़शई रङ्ग की कही जा सकती हैं। पर इस रङ्ग से इनका रङ्ग कुछ गहरा है। 'यक्स-रेज़' (X-rays) नाम की किरणें जिस दरजे की हैं ये किरणें भी उसी दरजे की हैं। पर और और बातों में इनमें और यक्स-रेज़ नाम की किरणों में उतना ही अन्तर है जितना कि इनमें और ध्वनि में अन्तर है। इन किरणों में जो देदीप्यमान शक्ति रहती है वह अँधेरे में नहीं देख पड़ती। यदि किसी अँधेरे कमरे में वे उत्पन्न कर दी जायं तो उनके प्रकाश को आदमी आँख से नहीं देख सकता। पर अध्यापक गेट्स ने इन किरणों को दृश्य कर दिया है। दीवार पर किसी चीज़ का लेप लगा कर फिर उस पर इन किरणों को डालने से ये देख पड़ने लगती हैं। इसी तरकीब से गेट्स साहब ने इनको दृग्गोचर किया है। जिस चीज़ का लेप वे दीवार पर लगाते हैं उस पर जब ये किरणें पड़ती हैं तब उसका रङ्ग बदल जाता है। इस चीज़ का नाम है 'रोडापसिन'। आँख में जो देखने की शक्ति है वह इसी चीज़ की बदौलत है। प्रकाश को ग्रहण करने में और कोई चीज़ इसकी बराबरी नहीं कर सकती। तुरन्त के मारे हुए जानवरों की आंखों से अध्यापक गेट्स इस चीज़ को इकट्ठा करते हैं। जितने निर्जीव और इन्द्रियहीन पदार्थ हैं सब इन नई किरणों के योग से पारदर्शी हो जाते हैं। हड्डी,

धातु, लकड़ी और पत्थर आदि के भीतर जाकर ये चमकने लगती हैं। जिस नली के भीतर से ये किरणें निकलती हैं उसके और पूर्वोक्त लेप से लिपी हुई दीवार के बीच जितनी निर्जीव चीजें रख दी जाती हैं उन सबको ये पारदर्शी बना देती हैं। पर ऐसा करने में न तो दीवार का रङ्ग बदलता है और न किसी तरह का छाया-चित्र ही दीवार पर पड़ता है। पर प्रत्यक्ष जीवधारियों को पारदर्शी बनाने में ये किरणें असमर्थ हैं। यदि इन्द्रिय-विशिष्ट और सजीव पदार्थ मसाला लगी हुई दीवार और इन किरणों के बीच में आ जायं तो उनकी छाया दीवार पर तुरन्त देख पड़ती है, और जब तक उनमें सजीवता रहती है तब तक वह छाया पूर्ववत् बनी रहती है।

एक ज़िन्दा चूहा एक ग्लास की नली में डाल दिया गया। वह नली, दीवार से कुछ दूर पर, किरणों की राह में रख दी गई। जब तक वह चूहा ज़िन्दा रहा उसकी छाया दीवार पर बराबर पड़ती रही। पर जब वह मारा गया तब उसका बदन सहसा पारदर्शी हो गया। इस वक़् अध्यापक गेट्स को एक बहुत ही विलक्षण बात देख पड़ी। जिस क्षण वह चूहा पारदर्शी हुआ उसी क्षण, ठीक उसीके आकार की, एक छाया नली के भीतर से निकली और मसाला लगी हुई दीवार की तरफ़ जाकर, कुछ दूर ऊपर, लोप हो गई। परीक्षा के वक़् गेट्स साहब के सहायक दो और अध्यापक भी थे। वे दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि उन्होंने इस छाया को दीवार पर, नीचे से ऊपर जाते हुए, अच्छी तरह देखा। यदि जाँच से इस बात का पता लग जाय कि इस छाया में जान है—वह सजीव है—तो सृष्टि होने के बाद, विज्ञान की सहायता से, पहले पहल इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिले कि जिसे हम मौत कहते हैं उसके बाद भी ज़िन्दगी क़ायम रहती है—अर्थात् शरीर के अस्तित्व का नाश हो जाने पर भी आत्मा के अस्तित्व का नाश नहीं होता।

अध्यापक गेट्स ने आत्मा के अविनाशी होने का जो सबूत दिया है वह विज्ञान से दिया है। विज्ञान के नियमों के अनुसार परीक्षा करके उन्होंने उसके अमरत्व की सिद्धि की है। और विज्ञान कभी झूठ नहीं बोलता; वह कभी धोखा नहीं देता। वह जो कुछ कहता है सच कहता है। जिस बात को वह सिद्ध कर देता है उसमें फिर कोई सन्देह नहीं रह जाता। यदि चूहे के बदन से निकली हुई किसी चीज़ की छाया को तुम साफ़ साफ़ देख सकते हो तो गाय, बैल, घोड़ा हाथी—नहीं, मनुष्य तक के शरीर से निकली हुई चीज़ की छाया को भी तुम देख सकोगे। शरीर में सजीवता का नाश होते ही, आदमी की बनाई हुई सारी रुकावटों को भेद करके, ऊपर की तरफ़, अनन्त आकाश में लीन हो जानेवाली यह चीज़ क्या है? इसको आप किस नाम से पुकारेंगे? और कोई चाहै उसे जो समझै, पर प्राच्यदेशीय पण्डित उसे फ़ौरन ही 'आत्मा' कहेंगे।

क्रिश्चियन-धर्म्म के अनुयायियों में जो लोग सन्देहवादी हैं वे कहते हैं—"ऊपर आकाश को जानेवाले आदमी के आत्मा और नीचे पाताल को जानेवाले पशुओं—हैवानों—के आत्मा को कौन जान सकता है"? पर क्रिश्चियनों को पुरानी धर्म्म-पुस्तक (Old Testament) के भविष्यद्वादी महात्माओं की अपेक्षा, इस बीसवीं शताब्दी में, विशेषतर ज्ञानी और विशेषतर परोक्षदर्शी पुरुषों के होने की सम्भावना है। वे लोग विज्ञान के बल से सन्देहयुक्त बातों को सन्देहहीन सिद्ध करेंगे और अनन्त आकाश में लीन हो जानेवाली अज्ञात वस्तुओं का भी पता लगावेंगे। मरे हुए चूहे की देह को छोड़ कर कोई चीज़ दीवार पर अपनी छाया डालती है। इसका पता अध्यापक गेट्स ने लगा लिया। वे अब यह सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं कि वह चीज़ इन्द्रियविशिष्ट है या नहीं—अर्थात् वह सज्ञानदशा में मृतक शरीर से बाहर निकलती है या अज्ञानदशा में। इसके बाद

जीवन और मृत्यु के बीच के विस्तृत मैदान की नाप-जोख होगी। इस प्रकार बहुत सम्भव है कि शीघ्रही आत्मा के अमरत्व का खूब दृढ़ प्रमाण विज्ञान के द्वारा मिल जाय। पर यह भी सम्भव है कि इतने पर भी कोई कोई सन्देहवादी इस बात को न स्वीकार करें कि आत्मा अमर है—वह कभी नहीं मरता। वह सिर्फ़ इतनाही स्वीकार करेंगे कि मृत्यु के बाद मनुष्य का आत्मा रहता तो है, पर न मालूम कहां रहता है और किस तरह रहता है। परन्तु मरने के बाद आत्मा का बना रहनाही उसके अस्तित्व का सबूत है। जब तक उस अस्तित्व का नाश होना कोई साबित न कर दे, तब तक आत्मा के अमरत्व को स्वीकार न करना युक्तिसङ्गत नहीं हो सकता।

कोई कोई विज्ञान-विशारद शायद यह प्रश्न करें कि क्या कारण है जो चूहा निर्जीव दशा में ही पारदर्शी हो जाता है, सजीव दशा में नहीं होता? इसका उत्तर अध्यापक गेट्स ने ख़ुदही दे रक्खा है। उन्होंने एक और जाँच के द्वारा इस प्रश्न को हल किया है।

एक कमरे के भीतरी हिस्से में अध्यापक गेट्स ने सीसे की चद्दर सब तरफ़ लगा दी। फिर उन्होंने उस चद्दर का लगाव, एक तार के द्वारा, ज़मीन से कर दिया। उस तार में उन्होंने एक ऐसा 'गैल्वनोमीटर' (विद्युन्मापक यन्त्र) लगाया जो आदमी के बदन से निकली हुई बिजुली की लहरों को माप सके। इस तरह उन्होंने इस बात को सप्रमाण साबित किया कि बदन के जिस पट्ठे, जिस नाड़ी, या जिस मज्ज्ञातन्तु से काम लिया जाता है, उससे बिजुली की धारा बाहर बहने लगती है। यदि कोई आदमी अपनी भुजा को ऊँचा उठावै और उसे ताने रहै तो, नीचे लटकाये रखने की अपेक्षा, उससे बहुत अधिक बिजुली बाहर निकलै। मन से काम लेते समय, अर्थात् किसी बात को सोचते समय, भी बिजुली का तेज-प्रवाह बह निकलता है। पास के वायुमण्डल पर उसका बड़ा असर पड़ता है। उसी की सहायता से लोग दूसरे के मन का हाल बहुधा जान लेते हैं। इस तरह और भी अनेक अद्भुत अद्भुत बातें वे कर सकते हैं। पट्ठों और मज्ज्ञातन्तुओं से काम लेते समय सब जीवधारियों की देह से बिजुली की लहरें निकलती हैं। परन्तु अध्यापक गेट्स की निकाली हुई प्रकाशविकिरक लहरें इतनी हलकी और इतनी धीमी हैं कि वे अपने से अधिक प्रकाशमान और गहरी वैद्युतिक लहरों के भीतर नहीं प्रवेश कर सकतीं। इसीसे जब वे सजीव चूहे के पास पहुँचती हैं, तब चूहे के बदन से निकलनेवाली लहरों पर वे टकराती हैं और आघात के वेग से दूर फेंक दी जाती हैं। यही कारण है जो इन लहरों का योग होने पर भी जब तक चूहे में जान रहती है तब तक उसमें पारदर्शिता नहीं आती।

पुस्तक-परीक्षा।

सूर्यसिद्धान्त। ज्योतिर्विद्या का यह प्रधान ग्रन्थ है। जयपुरनिवासी सिद्धान्तवागीश पण्डित माधव पुरोहित ने इसकी टीका संस्कृत में भी की है और हिन्दी में भी। इस तरह दो टीकाओं से विभूषित और पण्डित गिरिजाप्रसाद द्विवेदी से सम्पादित होकर यह ग्रन्थ मुंशी नवलकिशोर के छापाख़ाने में छपा है। जिल्द भी इसकी ख़ूब अच्छी है; काग़ज़ भी इसका ख़ूब मोटा है; और टाइप भी इसका ख़ूब बड़ा है। ऊपर मूल संस्कृत है; उसके नीचे सरल-संस्कृत-टीका है; उसके नीचे हिन्दी में विस्तृत भाष्य है; उसके भी नीचे उपपत्ति है। सूर्यसिद्धान्त के आज तक जितने संस्करण हमने देखे हैं उन सबसे यह उत्तम है। उपपत्ति देने से गणित का विषय विशेष सरल और बोधगम्य हो गया है। ग्रहणाधिकार-सम्बन्धी चित्र भी इसमें हैं। पुस्तक बहुत अच्छी है और बहुत उपयोगी है। हिन्दी टीका और हिन्दी उपपत्ति ने ज्योतिष के इस बृहत् ग्रन्थ को बहुत सरल कर दिया है। इस

की भूमिका विद्वत्तापूर्ण है। उसके देखने से और और बातों के सिवा एक बात यह भी मालूम हो जाती है कि आज कल के कुछ अनधिकारी लोग मूल विषय से ज़रा भी पहचान न रख कर किस प्रकार मराठी और बँगला आदि भाषाओं के भाष्य, वृत्ति, टीका और टिप्पणी आदि के बल पर हिन्दी में मनमानी छलांगें मारते और नाम और दाम, दोनों, कमाने की चेष्टा करते हैं।

✲

ऋजुस्तवमञ्जूषा। श्रीविशुद्धानन्द-सरस्वती-विद्यालय, कलकत्ता, के सब से बड़े अध्यापक पण्डित उमापतिदत्त शर्म्मा, बी० ए०, द्वारा रचित, संगृहीत और सम्पादित। इस पुस्तक का रूप बहुत ही मनोहारक है। काग़ज़ बहुत चिकना और टाइप बहुत सुन्दर है। इसका टाइटिल पेज देखते ही तबीयत खुश हो जाती है। यह पूर्वोक्त विद्यालय की पाठ्य-पुस्तक है। यह इसकी दूसरी आवृत्ति है। पहली आवृत्ति के बहुत जल्द बिक जाने से यह सिद्ध है कि लोगों ने इसे पसन्द किया है। इसमें धर्म्म की व्याख्या है; नित्य-कर्म्म की बहुत सी बातें हैं; और देवताओं के ध्यान, आवाहन, स्तोत्र और वन्दन आदि भी हैं। अन्त में द्विजाति-कर्म्म और सामान्य नीति भी है। संस्कृत के श्लोकों का भावार्थ सरल हिन्दी में दिया हुआ है। पुस्तक बहुत शुद्ध छपी है और जिस काम के निमित्त बनाई गई है उसे करने के लिए जो बातें आवश्यक हैं वे सब इसमें हैं। इसके पीछे "विचित्रोपदेश" नामक एक पुस्तक का विज्ञापन है। वह हमको अच्छा नहीं लगा; क्योंकि उसके पहले भाग में वह कविता है जो "भँड़ौआ" कहलाती है। जो लड़के उसे मँगावेंगे वे "भँड़ौआ" ही अधिक पढ़ेंगे।

✲

श्रीकरेशविलास। संस्कृत-कविता है। आकार छोटा है। पत्रसंख्या ५८ है। कर्ता का नाम पण्डित शिवदत्त "कविरत्न" है। इसमें सीकर के रावराजा माधवसिंहजी की भी तारीफ़ है और उनकी राजधानी इत्यादि की भी तारीफ़ है। कविता ललित और सरस है। पहले उल्लास में कालिदास की द्रुतविलम्बित-रचना की ख़ूब प्रतिस्पर्द्धा की गई है। इससे, एक आध जगह, यमकसाधन का यत्न करते समय, अन्तिम चरण में, अर्थ की कुछ खींचा तान हो गई है। आशा है रावराजा जी इस सत्कवि का अभीष्ट पूर्ण करेंगे। यदि पूरी पुस्तक नहीं तो नीचे की ही पंक्तियों का अर्थ यदि कोई राजा साहब को समझा दे, तो कविरत्न शिवदत्त जी का परिश्रम सफल हो जाय; और शायद अब तक सफल हो भी गया होगा।

(१) सत्कीर्तिपूरितकवीन्द्रजनार्थवृद्धिः।
(२) शत्रून् विधूनय कवीनभिनन्दयास्मान्।
(३) सोऽयं स्वयं कविजनेषु धनेन वर्षन्।
श्रीमाधव क्षितिपतिर्विजयेत शश्वत्॥
(४) श्रीमाधव क्षितिपतिः सहि मादृशेषु
श्रीदोपमोऽद्य निदधत् स्वदयाविलासम्॥

इस पुस्तक में कवि ने अपने ही मुंह से अपने को "शिवदत्त कवीन्द्र" कहा है। सो क्यों, समझ में नहीं आया।

✲

उपनिषद्। पाँच पुस्तकें हमारे पास एकही साथ आई हैं—प्रश्न, मुण्डक, कठ वाजसनेय और तलवकार। ये सब उपनिषद् हैं और मेरठ के स्वामियन्त्रालय में छपे हैं। इनमें पण्डित बदरीदत्त कृत पदार्थ और हिन्दी-भाष्य भी है। पण्डित लक्ष्मीराम "स्वामी" ने इनका संशोधन किया है। भाष्य बड़ी बुद्धिमानी से किया गया है। पर उपनिषदों पर इतनी टीका, टिप्पणी, भाष्य और विवृति आदि लेख निकल चुके हैं कि अब और अधिक की आवश्यकता, इस समय, नहीं देख पड़ती।

✲

ब्राह्मणकुलदीपक। पण्डित गङ्गासहाय, मुख़्तार, बुलन्दशहर, कृत। बड़ी पुस्तक है। कोई २०० पृष्ठ हैं। इसमें और और बातों के सिवा ब्राह्मण-वंश में होनेवाले प्रसिद्ध विद्वान, लेखक, कवि, वकील

डाकृर, ज्योतिषी, सन्यासी, गोस्वामी, और गायक आदि का संक्षिप्त वर्णन है। इस पुस्तक के कर्ता का कथन है कि इसमें "ब्राह्मणवंश का सच्चा इतिहास" है। सच्ची हों या न हों, पर अच्छी इसमें बहुत सी बातें ज़रूर हैं। पुस्तक का मूल्य १) रु० है।

✿

मृतकश्राद्धविषयक-प्रश्नोत्तर। मथुरानिवासी गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य कृत। दाम दो आने। नाम से ही विषय का परिचय हो जाता है। इसके प्रश्न श्राद्ध के खण्डन और उत्तर मण्डन पर हैं।

✿

पञ्चाङ्ग। सं० १९६२ का पत्रा है। पण्डित बापूदेवशास्त्री के शिष्यों ने बनाकर इसे प्रकाशित किया है। सिद्धेश्वर प्रेस, काशी, में छपा है। पञ्चाङ्ग अच्छा है और बहुत सफ़ाई से छापा गया है।

आख्यायिका।

शाहजहां बादशाह के समय तक यह नियम था कि जो मनुष्य बादशाह के यहां किसी प्रतिष्ठित पद पर रह कर, बहुत सा धन इकट्ठा कर लेता था, वह सब, उसके मरने पर, उसके वारिसों को न मिलता था। बादशाह ही उसका वारिस समझा जाता था। यह ऐसा अनुचित और अन्याय-पूर्ण नियम था कि इसके कारण बड़े बड़े अमीरों की स्त्रियों को, पति के मरने पर, शाही-पेनशनरूपी भिक्षा माँगनी पड़ती थी; और उनके लड़कों को, कभी कभी, बहुत छोटे छोटे काम करना पड़ते थे।

शाहजहां के समय में नेकनामख़ाँ नामक एक अमीर देहली में था। उसने कोई चालीस वर्ष तक बादशाही नौकरी की थी और बड़े बड़े पदों पर रह कर अनन्त धन-सञ्चय कर लिया था। परन्तु जब उसे पूर्वोक्त नियम का स्मरण होता था तब उसे अपार दुःख और खेद होता था। बुड्ढे होने पर यह बात उसे और भी अधिक असह्य होने लगी। अतएव मरने के पहले ही उसने अपनी सम्पत्ति चुपचाप निर्धन, कङ्गाल और दान-पात्र लोगों को बाँट दी। बाँट कर उसने बड़े बड़े घड़ों और हण्डों में कङ्कर, पत्थर, कोयला, चीथड़े और पुरानी जूतियां भर कर उन पर मोहर लगा दी, और यह प्रकाशित कर दिया कि उनके भीतर भरा हुआ धन, उसके मरने पर, बादशाह के यहां भेज दिया जाय। शाहजहां को नेकनामख़ां की धनाढ्यता का समाचार पहले ही से मिल चुका था। इसलिए जिसदिन वह मरा उसके दूसरे ही दिन बादशाह ने उसके घर अपना एक विश्वास-पात्र सरदार भेजा। उसने उसके ख़ज़ाने से मोहर लगे हुए वे सब घड़े और हण्डे निकाले और निकाल कर बादशाह के पास उन्हें वह ले आया। शाहजहां उस समय दीवानेख़ास में बैठा था। वहीं वे सब रक्खे गये। उस सम्पत्ति को देखने की उसे इतनी उत्सुकता थी कि उसने उन घड़ों को तत्काल ही खोलने की आज्ञा दी। पहला घड़ा खोला गया। उससे निकला क्या? पुरानी जूतियों का हार! देखते ही शाहजहां का चेहरा ज़र्द हो गया; और बिना और घड़ों को खुलाये चुपचाप, दरबार से उठकर, वह भीतर महलों में चला गया।

ऐसा ही एक दूसरा उदाहरण सुनिये। वह भी शाहजहां के ही समय का है। देहली में एक मालदार महाजन था। बादशाह के यहां वह बहुत दिनों तक काम करता रहा था। मरने पर उसने कई लाख रुपया छोड़ा। वह उसकी विधवा ने छिपा रक्खा। शाही ख़ज़ाने में उसे उसने नहीं जमा कराया। उस महाजन के एक पुत्र था। वह बड़ा दुःशील और दुराचारी था। उसने अपने पिता का कमाया हुआ धन उड़ाना आरम्भ किया। यह देखकर उसकी मा ने तहख़ाने में ताला बन्द करके कुञ्जी अपने पास रखली। जब उसके लड़के को रुपया न मिला तब उस मातृ-शत्रु ने बादशाह को ख़बर देने की मूर्खता की। ख़बर पाकर शाहजहां

ने उस महाजन की विधवा को बुलाया। वह हाज़िर हुई। उसको हुक्म हुआ कि दो लाख रुपया वह शाही ख़ज़ाने में दाख़िल करै ग्रैार एक लाख ग्रपने लड़के को दे। जो कुछ बचै उसे वह ग्रपने लिए रक्खै। यह कहकर शाहजहां ने उस विधवा को तत्काल बाहर जाने की ग्राज्ञा दी। जो लोग उसे लाये थे वे उसे निकालने लगे। परन्तु वह स्त्री बड़ी धैर्य्यवती ग्रैार प्रत्युत्पन्न-मति था। वह उन लोगों से झगड़ने लगी ग्रैार कहने लगी कि मुझे एक बात बादशाह से कह लेने दो। शाहजहां ने उसका यह कहना सुना ग्रैार उसको वापस बुला लिया। उसके सम्मुख होने पर बादशाह ने पूछा कि वह क्या कहना चाहती है। यह सुनकर उस स्त्री ने बादशाह को धन्यवाद दिया ग्रैार इस प्रकार निवेदन किया—"हज़रत सलामत! मेरा लड़का जो मुझ से ग्रपने पिता की सम्पत्ति माँगता है सो तो ठीक है; वह हमारा पुत्र है; इस लिए वह हमारा वारिस है। परन्तु, हाथ जोड़ कर, मैं यह ग्रापसे पूछती हूं कि मेरे पति से ग्रापका कैान रिश्ता था जो ग्राप उसका दो लाख रुपया माँगते हैं! इस सीधे सादे, परन्तु विलक्षण भाव-गर्भित, प्रश्न को सुनकर शाहजहां बहुत प्रसन्न हुग्रा। एक हिन्दू वणिक् से ग्रपने रिश्ते की बात का विचार करके उसे ऐसा कुतूहल हुग्रा कि वह क़हक़हा मार कर हँस पड़ा ग्रैार उसने ग्राज्ञा दी कि ग्रपने पति की सम्पत्ति की वह विधवा ही एक मात्र ग्रधिकारिणी मानी जावै। इस प्रकार उसने ग्रपनी पहली ग्राज्ञा भङ्ग कर दी।

ये ग्राख्यायिकायें मन की गढ़न्त नहीं हैं; सर्वथा सत्य हैं। देहली के सिंहासन पर जब ग्रैारङ्गज़ेब दृढ़ता से ग्रासीन हो गया तब उसने ग्रपने बाप शाहजहां के साथ कठोरता का बर्ताव बन्द कर दिया। यद्यपि वह ग्रागरे में क़ैद था, तथापि उसे कोई कष्ट न था। उसके साथ ग्रैारङ्गज़ेब पत्र-व्यवहार भी रखता था। जब ग्रैारङ्गज़ेब ने ग्रमीरों के मरने पर, उनकी सम्पत्ति को ज़ब्त कर लेना बन्द कर दिया, तब शाहजहां ने उसे एक पत्र लिखा। इस पत्र में उसने लिखा कि पुराने नियमों को बन्द न करना चाहिए। इस पर ग्रैारङ्गज़ेब ने एक लम्बा उत्तर भेजकर इस रसम को जारी रखने में होनेवाले ग्रन्याय का बहुत ही ग्रच्छा वर्णन किया है। उसने इस पत्र में इन दोनों ग्राख्यायिकाग्रों का भी निदर्शन किया है ग्रैार उनसे होनेवाले बादशाही ग्रपमान पर क्रोध भी व्यञ्जित किया है।

ग्राँख।

[गत ग्रङ्क के ग्रागे]

बस। ईश्वरीय नियमों से दृश्य ग्राभास भूत वा भविष्यत् त्वक् के संवेदनों के विश्वस्त चिन्ह हो गये हैं। दर्शन के चिन्हों का यह ज्ञान स्वाभाविक नहीं है; किन्तु दोनों प्रकार के संवेदनों के भूत सम्बन्ध से क्रमशः सीखा जाकर कल्पनाग्रों को सुझाता है।

इस तरह बर्कले ने सिद्ध किया है कि "पदार्थ हमें दूर दिखाई देते हैं" यह केवल भ्रममात्र है, ग्रांख से दूरत्व का ज्ञान नहीं होता; केवल कुछ स्पर्श के संवेदनों की सूचना हो जाती है जिसे हम व्यवहार में "दूरत्व" मान लेते हैं। इसके बाद "बर्कले" ने सिद्ध किया है कि दूरत्व ही कल्पना से उत्पन्न नहीं है, किन्तु यह बाह्य जगत् भी वैसा ही है। "मन" से ग्रतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है, सब संवेदन मन की शक्ति का ही विकाश है। जड़ जगत् (Matter) कोई चीज़ नहीं है, सब "माया" ब्रह्म ही ने कल्पित की है। इस विषय को हम फिर कभी विस्तृत रूपसे प्रतिपादन करेंगे।

दर्शनेन्द्रिय के विषय में "बर्कले" के इस सिद्धान्त की पुष्टि उन ग्रन्धे मनुष्यों की चेष्टाग्रों ने की है जिनकी जन्मान्ध ग्रांखें प्रयोग द्वारा सुधारी गई हैं। हैमिल्टन ने ऐसे कई प्रयोगों का हाल लिखा है जिनमें से हम यहां तीन लिखते हैं।